तृतीय अध्याय

गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्यों में सामाजिक चेतना

3.1 वर्ग विषमता

साहित्य और समाज एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा होता है अतः हम कह सकते हैं कि साहित्य और समाज सदैव ही एक दूसरे के पूरक हैं। जहाँ एक ओर समाज साहित्य के लिए उचित भावभूमि तैयार करने का कार्य करता है वहीं दूसरी ओर साहित्य का उद्देश्य भी समाज को बेहतर बनाने की परिकल्पना प्रस्तुत करना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में साहित्य और समाज के अंतः संबंध को इस प्रकार परिभाषित किया है- ''प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि चित्तवृत्तियों में परिवर्तन होने के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य की परम्परा के साथ उसका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।''[1] इस प्रकार जैसे-जैसे समाज में परिवर्तन होता जाता है वैसे-वैसे साहित्य में भी परिवर्तन होने लगता है।

आज के युग में साहित्य के महत्व को कम करके आंका जाता है। किन्तु साहित्य का अपना अलग ही वर्चस्व है। किसी भी समाज के तात्कालिक परिवेश को समझने के लिए वहाँ का साहित्य महत्त्व पूर्ण भूमिका निभाता है। कोई भी समाज साहित्य से प्रेरित होकर ही आगे बढ़ता है। किसी समाज को प्रतिबिम्बित करने में साहित्य एवं साहित्यकार की महती भूमिका रहती है। साहित्य और साहित्यकार के इसी महत्त्व को स्वीकारते हुए प्रेमचंद ने 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की सभा को संबोधित करते

हुए कहा था- ''मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि जो कुछ भी लिख दिया जाए वह सबका सब साहित्य है। साहित्य उस रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित एवं सुंदर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है जब उसमें जीवन की सच्चाईयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई है।

...मेरे विचार से साहित्य की सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है। निस्संदेह काव्य और साहित्य का उद्देश्य हमारी अनुभूतियों की तीव्रता को बढ़ाना है।

...साहित्य अपने काल का प्रतिबिम्ब होता है जो भाव और विचार लोगों के हृदयों को स्पन्दित करते है, वही साहित्य पर भी अपनी छाया डालते हैं। ...अब साहित्य केवल मन बहलाव की चीज नहीं है, मनोरंजन के सिवा उनका और भी कुछ उद्देश्य है। अब वह केवल नायक-नायिका के संयोग वियोग की कहानी नहीं सुनाता, जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है और उन्हें हल करता है। अब वह स्फूर्ति और प्रेरणा के लिए अद्भुत आश्चर्यजनक घटनाएँ नहीं ढूंढता और न अनुप्रास का अन्वेषण करता है, किन्तु उसे उन प्रश्नों से दिलचस्पी है जिनसे समाज या व्यक्ति प्रभावित होते हैं। उनकी उत्कष्टता की वर्तमान कसौटी अनुभूति की वह तीव्रता है जिससे वह हमारे भावों और विचारों में गति पैदा करता है।

कवि या साहित्यकार में अनुभूति की जितनी तीव्रता होती है उसकी रचना उतनी ही आकर्षक और ऊँचे दर्जे की होती है।''[2]

प्रेमचन्द के इन वक्तव्यों के आधार पर हम कह सकत हैं कि कोई भी साहित्यकार अपने परिवेश से कटकर नहीं रह सकता है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है, किंतु यह दर्पण की भांति समाज का प्रतिबिंब मात्र ही हमारे समक्ष नहीं रखता है अपितु उसे सुधारने का भी प्रयास करता है इसके साथ-साथ समाज में बदलाव की मांग भी करता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहकर अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए तत्पर रहता है। एक मनुष्य का सामाजिक अस्तित्व एवं उसकी सामाजिक चेतना का परस्पर संबंध सामाजिक जीवन से है। जैसे-जैसे मनुष्य के सामाजिक संबंधों में परिवर्तन होता है वैसे-वैसे उसकी सामाजिक चेतना का भी विकास होता है। एक व्यंग्यकार समाज का एक संवेदनशील प्राणी होता है और उसकी पैनी दृष्टि सामाजिक जीवन की गहराई में उतरकर सामाजिक वास्तविकताओं एवं मान्यताओं का सूक्ष्म विश्लेषण करने का कार्य करती है।

एक व्यंग्यकार अपने समय की सामाजिक सांस्कृतिक पारिवारिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक स्थितियों का अवलोकन करता है और अपनी सर्जना द्वारा अवांछनीय तथा अशिव के विनाश एवं शिव की स्थापना का प्रयास करता है। समाज में घटित परिवर्तन और उससे उत्पन्न मान्यताएँ उसे प्रभावित करती हैं। समाज में व्याप्त विसंगतियों पर प्रहार करने के लिए वह व्यंग्य को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है। वर्तमान समय में, जबकि पुरानी मान्यताएँ एवं परम्पराएँ टूट रही हैं और नई परम्पराएँ एवं मान्यताएँ पूरी तरह स्थापित नहीं हुई है, ऐसे समय में समाज में विसंगतियों एवं विरोधाभासों का आ जाना स्वाभाविक है। साथ ही जितनी तेजी से भौतिक उन्नति हो रही है उतनी गति से वैचारिक प्रगति नहीं हो पाई है। फलस्वरूप अनेक प्रकार की विसंगतियों और किसी निश्चित आदर्श का आकांक्षी व्यंग्यकार इन विसंगतियों को अनदेखा नहीं कर सकता है। अतः अपने व्यंग्यों के माध्यम से वह इन परिस्थितियों पर तीक्ष्ण प्रहार करते हुए समाज को जागृत करने का भरसक प्रयास करता है।

व्यंग्यकार समाज का एक ऐसा सफाईकर्मी है जो अपने व्यंग्य के द्वारा समाज का कूड़ा-कचरा बाहर करके समाज को स्वच्छ बनाता है। यदि समाज में सामाजिक विसंगतियाँ और सामाजिक कोष लगातार पनपते रहेंगे तो समाज विश्रृंखलित हो जाएगा। ''समाज ही समूचे साहित्य का मूल उत्स है। समाज की जो मान्यताएँ सत्य से परे होती है और फिर भी संपूर्ण समाज को अपने अनुसार चलने के लिए

बाध्य करती है, वे आलोचना की पात्र होती है। जागरूक एवं संवेदनशील लेखक होने के कारण व्यंग्यकार इन मान्यताओं एवं उनके कारण उत्पन्न परिस्थितियों से सर्वाधिक प्रभावित होता है।''[3] गोपाल चतुर्वेदी ने इन स्थितियों से पीड़ित आमजन की दशा को अपने व्यंग्यों के माध्यम से न केवल स्वर दिया है वरन् इसके लिए उत्तरदायी लोगों पर वह प्रहार भी करते दिखलाई पड़ते हैं। व्यंग्य रचनाओं में एक ओर जहाँ सामाजिक विसंगतियों के लिए उत्तरदायी लोगों के प्रति प्रहारात्मक आक्रोश व्यक्त हुआ है। वहीं दूसरी तरफ व्यंग्य के मूल में सामाजिक हित की कामना मुख्य है। इसलिए व्यंग्यकार की दृष्टि समग्र रूप से मानवीय कल्याण से ओत-प्रोत रहती है। जीवन के कटु सत्य एवं यथार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए व्यंग्य सशक्त एवं सफल माध्यम है। व्यंग्य में मारक क्षमता होती है उसमें शब्दों का मितव्ययी प्रयोग किया जाता है व्यंग्य में विचारों की उत्तेजना होती है। इसके द्वारा यथार्थ प्रकट होता है, ताकि समाज का एक-एक व्यक्ति उस पर विचार करने के लिए विवश हो सके।

समाज में विद्यमान विसंगतियों और विडम्बनाओं ने व्यंग्यकारों को समाज की स्थिति सुधारने के लिए व्यंग्य को अपना हथियार बनाने के लिए विवश होना पड़ा। सामाजिक व्यंग्य के संदर्भ में व्यंग्यकारों ने उसके प्रत्येक पक्ष को व्यंग्य का आलम्बन बनाया है। समाज में फैली विभिन्न विसंगतियाँ चाहे वह शिक्षा से संबंधित हो, धर्म से हो, न्याय और पुलिस से हो या फिर पूंजीपति और मजदूर वर्ग से हो, व्यंग्य के तीक्ष्ण प्रहार से नहीं बच सकी है। व्यंग्य ने सामाजिक जीवन के प्रत्येक पक्ष, पारिवारिक जीवन की प्रत्येक स्थिति का पर्दाफाश किया है। हमारे बनावटी शिष्टाचार भी व्यंग्यकार की लेखनी से बच नहीं सके हैं। आज सभ्यता और संस्कृति के नाम पर हमारे भारतीय समाज में फैशन की एक अंधी दौड़ चल रही है जिसने समाज को खोखला कर दिया है। गोपाल चतुर्वेदी ने इस स्थिति को देखा परखा और अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम से व्यंग्य बाणों के द्वारा समाज में चेतना लाने का प्रयास किया।

3.1 वर्ग विषमता

समाज के अंतर्गत मनुष्य को तीन वर्गों में बांटा गया है उच्च वर्ग, मध्य वर्ग, निम्न वर्ग। इन तीनों ही वर्ग में आपस में इतना अंतर और मतभेद है कि उसे किसी भी स्थिति में समाप्त करना असंभव सी बात है। इन वर्ग विशेष में फैली असमानता, असंगतियों को गोपाल चतुर्वेदी ने बखूबी अपने व्यंग्यों में उकेरा है।

3.1.1 उच्चवर्ग

उच्चवर्ग से तात्पर्य है- 'ऊँचा श्रेष्ठ वर्ग।'[4] हमारे समाज में उच्च वर्ग अपनी धन-संपदा, वैभव के कारण समाज में अपना श्रेष्ठ स्थान सिद्ध करता है और सामाजिक दृष्टि से ऊँचा माना जाता है। टाम, बाटमोर के अनुसार ''यदि व्यक्तियों का वर्गीकरण उनके राजनीतिक और सामाजिक प्रभाव अथवा सत्ता के आधार पर किया जाए तो अधिकांश समाजों में यह स्थिति सामने आएगी कि जिन व्यक्तियों का संपत्ति के वितरण संबंधी अनुक्रम में जो स्थान था वही स्थान उन्हें इस अनुक्रम में भी मिलेगा। तथाकथित उच्च वर्ग आम तौर पर सबसे अधिक मालदार भी होते हैं। ये वर्ग अभिजन अथवा कुलीन वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं।''[5] अतः उच्च वर्ग को हम समाज में विद्यमान शोषक वर्ग के रूप में भी जान सकते है।। यह वर्ग उत्पादन के सभी साधनों को अपने हाथों में रखते हुए उत्पादन करने वाले वर्ग के श्रम का शोषण कर स्वयं के लिए अपार संपत्ति एकत्रित कर लेता है। उच्च वर्ग की यह मानसिकता रही है कि वह निम्न वर्ग को बड़ी हेय दृष्टि से देखता है निम्न वर्ग के प्रति उसका व्यवहार अत्यंत अपमानजनक, क्रूर एवं अमानवीय रहा है।

गोपाल चतुर्वेदी ने इस प्रकार के उच्च वर्ग पर व्यंग्य किया है। उच्च वर्ग के व्यक्तियों को अपनी सामाजिक स्थिति व अपने ऐश्वर्य को देखते हुए सदा ही इस बात का डर बना रहता है कि अपने से कम सामाजिक प्रतिष्ठा वाले तथा गरीब लोगों के साथ उठने बैठने व बाते करने से उनका सामाजिक स्तर गिर न जाए। गोपाल चतुर्वेदी ने 'फार्म हाउस के लोग' में उच्च वर्ग के लोगों पर व्यंग्य करते हुए कहा है- ''पहले उन्होंने सोचा कि एक गेस्ट हाउस बना लें। विदेशी मेहमान वहीं ठहरें। वहीं उनके खाने-पीने तथा

अन्य मनोरंजन का आयोजन हो उनके एक समृद्ध दोस्त ने उन्हें समझाया कि बिना फार्म हाउस के शहर के बड़ों में उनका नाम नहीं होना। सफल सम्पादक, नेता, उद्योगपति, व्यापारी वाकई बड़े तभी बनते हैं जब उनका फार्म हाउस बने।

उसने सलाह दी, ‘‘सत्ताधारियों के पड़ोस में उनसे सम्पर्क बनेगा। नए धंधों की गुंजाइश बढ़ेगी। यह तुम्हारी कोठी भजन-पूजन के लिए ठीक है, आधुनिक स्टाइल के जीवन के लिए नहीं।’’[6]

उच्च वर्ग के पास धन की कोई कमी नहीं है अतः छोटे-से-छोटे आयोजन के लिए भी अधिक से अधिक पैसे खर्च करने के लिए सदैव तैयार रहते हैं।

उच्चवर्ग में सामाजिक मान्यताओं के प्रति स्नेह भाव भी कम होता है। यह वर्ग सामाजिक मापदंडों का प्रयोग अपनी इच्छा अनुसार ही करते हैं तथा समाज में हो रही क्रांति आदि में भी कम सहयोग करते हैं। इनका एक मात्र उद्देश्य समाज में रहकर अधिक से अधिक धन प्राप्त कर ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करना होता है। उच्च वर्ग जिसमें पूंजीपति तथा उद्योगपति शामिल हैं, ये अधिकांशतः पुराने सामंत ही हैं अतः इनकी मानसिकता भी सामंतवादी ही दिखलाई पड़ती है जो मजदूरों तथा श्रमिकों का शोषण करने के साथ ही साथ उनसे अनुचित व्यवहार भी करते हैं। इस वर्ग में एक प्रकार की संवेदन हीनता होती है जिसमें संबंधों की कोई परवाह नहीं होती है। पिता-पुत्र, पति-पत्नि, माता-पिता, गुरु-शिष्य आदि परम्परागत संबंधों का इस वर्ग में कोई महत्व नहीं है, महत्व है तो केवल धन का।

‘फार्म हाउस के लोग’ में यह दर्शाया गया है कि शादी पार्टियों में काम करने के लिए जाने वाली लड़कियों का उच्च वर्ग के लोग किस प्रकार फायदा उठाना चाहते हैं- ‘‘‘इवैंट परफैक्ट’ की लड़कियाँ और युवा जाने की तैयारी में लगे थे कि वीर ने पीछे से एक का कंधा पकड़कर उससे वहीं रूकने को कहा। शराब के आधिक्य से वह अपना आपा खो चुके थे। अगर आँखों से लार टपकती तो उस लंबी गोरी

लड़की का वक्षस्थल वीर के कंधे पर टिके सिर से भीग गया होता। उनका एक हाथ नीचे फिसलते-फिसलते उसके नितंबों तक पहुँच चुका था।

उनकी भर्राती आवाज सबको सुनाई दी। अगला कोंटेक्ट भी हम इवैंट परफैक्ट को ही देंगे, पर हर सौदे की कुछ कीमत होती है।''[7]

मानव-समाज के इतिहास में इस वर्ग की भूमिका को देखकर यह विदित होता है कि प्रारम्भ से ही यह अपने हित और स्वार्थ के प्रति अधिक जागरूक रहा है। समाज का सर्वेसर्वा बनने के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ता है किंतु अपनी कार्य कुशलता, चतुराई एवं दांवपेच से इसने समाज में अपने अस्तित्व को बनाए रखा है। इस वर्ग के लोग यह मानते हैं कि चरित्र, नेतृत्व, जीवन-शैली आचरण, व्यवहार, संस्कृति ऐसे तत्त्व हैं जो उन्हें समाज में एक अलग दर्जा ही देते हैं किंतु इतिहास साक्षी है कि स्वयं को उच्च आदर्शों का पुंज घोषित करने वाला उच्च वर्ग हिंसा, क्रूरता, निर्दयता और छलकपट से समाज के दूसरे वर्गों का शोषण करता आया है। प्रारम्भिक काल में इसने मानवता के एक बहुत बड़े भाग को दास बनाकर अपनी अमानवीयता के परिचय से अपने वर्गीय जीवन की शुरूआत की। सामंती काल में इसने किसानों से लगान वसूल कर उन्हें उनकी ही भूमि से बेदखल किया और आज के युग में वह मील मजदूरों का शोषण कर रहा है। पहले की भंति आज भी मंत्री तथा पुलिस आदि इनकी सेवा के लिए सदैव तत्पर रहते हैं।

3.1.2 मध्यम वर्ग

भारत में मध्यवर्ग का उदय ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आने के बाद हुआ। अंग्रेजों को भारत में अपनी हूकूमत चलाने के लिए प्रशासन में दूसरी व तीसरी श्रेणी के ऐसे शिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ी जो राज-काज का काम देख सकें। ब्रिटिश शासन की इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए

देश में शिक्षा का प्रसार व मध्यवर्ग का उदय हुआ। मध्यवर्ग का तीव्र विकास उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में 1857 की क्रांति के बाद, ब्रिटन की महारानी द्वारा भारत का शासन अपने हाथ में ले लेने से माना जा सकता है। शिक्षा के प्रसार और औद्योगीकरण के फलस्वरूप बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दशकों में इस वर्ग के आकार में उल्लेखनीय वृद्धि हुई और आजादी के बाद तो यह वर्ग समुद्र की तरह फैलता गया।

समाज में उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के बीच मध्यमवर्ग की स्थिति त्रिशंकु की तरह है। उसकी इच्छाएँ व आकांक्षाएँ तो उच्च वर्ग से जुड़ी हैं लेकिन उसके पैर निम्नवर्ग की यथार्थ जमीन की ऊपरी सतह पर टिके हैं। यही कारण है कि उसमें एक गहरा अंतर्विरोध पलता है जो उसके चरित्र में अस्थिरता व दो मुँहेपन के रूप में दिखलाई पड़ता है।

मध्यमवर्ग की सीमारेखा में आने वाले व्यक्तियों की संख्या उच्चवर्ग से अधिक है तथा निम्नवर्ग के रुढ़िबद्ध जीवन की अपेक्षा यह वर्ग शिक्षित व विचारशील होता है। इस वर्ग के रीति-रिवाज, व्यवहार रूचि, अरूचि तथा संस्कृति इसे अन्य वर्गों से अलग रखती है। मध्यम वर्ग तो पूर्णतः आधुनिक है और न ही पूर्णतः रूढ़िग्रस्त। यह उन दोनों बिंदुओं के मध्य चक्कर लगाता है।

समाज में मध्यवर्गीय की स्थिति का बहुत सुंदर एवं यथार्थ चित्रण करते हुए हरिशंकर परसाई ने अपने व्यंग्य लेख ‘एक मध्यवर्गीय कुत्ता’ में कहा है- ‘‘यह कुत्ता उन सर्वहारा कुत्तों पर भौंकता भी है और उनकी आवाज में आवाज भी मिलाता है। कहता है - मैं तुममें शामिल हूँ। उच्चवर्गीय झूठा रोब भी और संकट के आभास पर सर्वहारा के साथ भी, यह चरित्र है इस कुत्ते का। यह मध्यवर्गीय चरित्र है। यह मध्यवर्गीय कुत्ता है। उच्चवर्गीय होने का ढोंग भी करता है और सर्वहारा के साथ मिलकर भौंकता भी है।’’[8] इस प्रकार मध्यवर्ग उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के बीच झूलता रहता है। एक ओर तो वह निम्न वर्ग के

जीवन स्तर को अपनाने में शर्म महसूस करता है। दूसरी ओर वह उच्चवर्ग के जीवन स्तर को अपनाना चाहता है। किंतु आर्थिक विवशता के कारण वह उसे अपना नहीं पाता है।

गोपाल चतुर्वेदी ने 'खिलौनो का खतरा' नामक एक लेख में मध्यवर्ग के लोगों की आर्थिक दुर्बलता को बताते हुए कहा है- ''बोलते-चलने वाले विदेशी खिलौनों के मुकाबले कम कीमत होने के बावजूद अपनी जेब की हैसियत इन्हें खरीदने की नहीं थी। हमने दुकानवाले से अपनी दिक्कत बताई। उसने एक अच्छे सैल्समैन के नाते हमें पढ़ाई 'पैसे का मत सोचिए।' हम किस्तों पर भी माल बेचने को तैयार है। सिर्फ बारह प्रतिशत अतिरिक्त ब्याज पड़ेगा। बैंक से लोन हम दिलवाएंगे। तीन साल की आसान किस्ते है। जरा अंदाज लगाए आपके साहबजादे कितने किस्मत वाले है। अभी से उन्हें, अफसर, सिपाही खरीदने का अभ्यास हो गया तो भविष्य में कामयाबी उनके कदम चूमेगी।

अपने बच्चे की सफलता में किसकी रूचि नहीं है? दूसरे माँ बाप की तरह हम भी चाहते हैं कि अच्छे स्कूल में पढ़े। जितना हमारे माँ-बाप ने हमारे लिए किया है, हम उससे कुछ ज्यादा करने के इच्छुक है।''[9] अतः मध्यवर्ग का आर्थिक पक्ष सुदृढ़ नहीं होता। आर्थिक पक्ष में सुदृढ़ता न होने के कारण यह वर्ग सदैव ही जीवन में कठिनाइयों का सामना करता रहता है। इस वर्ग के पास आर्थिक साधनों की कमी रहती है। कमाने वाला एक व्यक्ति होता है और उस पर सारा परिवार निर्भर रहता है। उस ऐसी अवस्था में परिवार में मतभेद जन्म लेने लगते हैं। आर्थिक समस्याओं ने मध्यम वर्गीय व्यक्ति का जीवन तोड़ सा दिया है। इसके सामने बेरोजगारी की समस्या है। मध्यवर्गीय लोगों में सामाजिक दिखावे की भावना विद्यमान रहती है और इसे पूरा करने के लिए यह वर्ग अपनी आय से अधिक व्यय कर देता है और इसी कारण इन्हें आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है।

इस प्रकार मध्यम वर्ग उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बीच की कड़ी है। यह वर्ग समाज के हर क्षेत्र में अपनी विशेष भूमिका का निर्वहन करता है

3.1.3 निम्न वर्ग

ऐतिहासिक दौर में निम्नवर्ग कभी दास, भूदास, कृषिदास, श्रमिक, सर्वहारा तथा भारतीय समाज में शुद्र आदि नामों से पुकारा जाता रहा है। निर्धनता, पिछड़ापन, अशिक्षा इस वर्ग की पहचान है। उपर्युक्त विशेषताओं में से निर्धनता को छोड़कर अन्य विशेषताएँ तो प्रायः तीनों ही वर्गों में देखने को मिलती है, तब हम निम्न वर्ग पर ही इसका भार लादने की व्यर्थ कोशिश क्यों करें और यह भी विचार करने योग्य है कि निर्धनता के लिए क्या निम्नवर्ग स्वयं उत्तरदायी है? हमारा इतिहास बताता है कि वर्ग-विभक्त समाज कभी भी किसी भी युग में मानव को समान जीवन जीने के अवसर नहीं दिए गए। समाज में व्याप्त यह शोषण ही असमानता और उत्पीड़न को जन्म देता है। निम्न वर्ग साधनहीन होते हैं और गरीब कहलाते हैं। यह वर्ग मेहनत-मजदूरी कर ईमानदारी का जीवन व्यतीत करते हैं। यह वर्ग समाज का वह भाग है जो आर्थिक आधार पर ऊपर से नीचे की ओर आते हुए अंतिम स्तर पर होता है।

यह वर्ग दूसरे वर्गों की तुलना में अधिक शारीरिक मेहतन का कार्य करता है और फिर भी आर्थिक दृष्टि से उक्त दोनों वर्गों से कम महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। इस पर गोपाल चतुर्वेदी ने व्यंग्य करते हुए लिखा है - ''उसके इस निरर्थक चिंतन में रामदास ने आकर व्यवधान डाला। रामदास माली था और बंगले के पीछे बने सर्वेंट क्वार्टर में रहता था। 'मेम साहब हमारे मुन्ना को बड़े जोर का बुखार आ गया है। पूरा बदन तपता है एक घंटे से तड़प रहा है। कोई दवा हो तो दें। रामदास ने रेखा से विवश प्रार्थना की। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थी और आँखों में असहाय होने की कातरता झलक रही थी।''[10] निम्नवर्ग के लोगों को इस प्रकार की समस्या से दिन-प्रतिदिन गुजरना पड़ता है। और इसके समाधान के लिए आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण उसे दूसरों के आगे हाथ भी फैलाना पड़ता है। इस प्रकार निम्नवर्ग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आजीवन कड़ी मेहनत करता है, किंतु विडम्बना यह है कि अत्यधिक शारीरिक श्रम करने के बाद भी वह आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ नहीं हो पाता है क्योंकि निम्न वर्ग के लोगों का

शोषण उच्च वर्ग के लोग करते हैं। उन्हें उनके कार्य की न्यूनतम मजदूरी भी नहीं दी जाती है और उन्हें अनुचित कार्य करने के लिए बाध्य भी करते हैं।

कार्ल मार्क्स ने इसी निम्न या शोषित वर्ग को शोषण से मुक्ति दिलाने की बात की है। उत्पादन के साधनों पर इसका स्वामित्व नहीं होता, इसलिए कुछ खो जाने का भय भी इस वर्ग को नहीं होता है। इस पूंजीवादी व्यवस्था में सर्वहारा वर्ग एक ऐसे रूप में प्रकट हुआ है जो उत्पादन-प्रक्रिया में स्वयं उत्पादन का एक हिस्सा बन जाता है, साथ ही पूँजीपतियों की समृद्धि का साधन भी बन जाता है। जब इसे ज्ञान होता है कि उसके श्रम के बल पर कोई अन्य धन सम्पन्न हो रहा है, अर्थ दर्शन के सारे गूढ़ रहस्य उसके नेत्र निहारने लगते हैं तथा वह शोषण के अर्थ तंत्र को विध्वंस करने हेतु कटिबद्ध हो उठता है। "जिस अनुपात में पूंजीपति वर्ग का अर्थात पूँजी का विकास होता है उसी अनुपात में सर्वहारा वर्ग का, आधुनिक मजदूर वर्ग का उन श्रमजीवियों के वर्ग का विकास होता है, जो तभी तक जिन्दा रह सहते हैं जब तक उन्हें काम मिलता जाए और उन्हें काम तभी तक मिलता है जब तक उनका श्रम पूँजी में वृद्धि करता है I ये श्रमजीवी जो अपने को अलग-अलग बेचने के लिए लाचार हैं अन्य व्यापारिक माल की तरह खुद भी माल हैं और इस लिए वे होड़ के हर उतार चढ़ाव तथा बाजार की हर तेज़ी-मंदी के शिकार होते हैं I"[11]

श्रमिक जीविकोपार्जन के लिए अपना श्रम बेचने को विवश है वह कारखाने में अथवा खेत में काम करते हुए एक मशीन की ही तरह हो जाता है। इस वर्ग के लोगों को पूँजीपति रूपी राक्षस हर तरह से दबाकर रखना चाहते हैं। कम से कम वेतन में वे उससे अधिक से अधिक काम लेना चाहते हैं और अगर कोई मजदूर इसके विरुद्ध आवाज उठाता है तो ये पूँजीपति या तो उसे अपनी मील या कंपनी से बाहर निकाल देता है या फिर उसे मरवा दिया जाता है।

पूँजीपतियों ने निम्नवर्ग के व्यक्ति के जीवन को तहस-नहस करके रख दिया है। जो भी मजदूर थोड़ा बहुत संघर्ष करता है उसे चोरी-डकैती के इल्जाम में फंसाकर जेल जाने के लिए मजबूर कर दिया

जाता है। निम्नवर्गीय व्यक्ति के पास जब रोटी खाने के लिए भी पैसे नहीं होते हैं, तो वह जेल जाने के लिए भी तैयार हो जाता है। गोपाल चतुर्वेदी ने 'मानसिक मर्ज के मजे' नामक अपने व्यंग्य लेख में दर्शाया है कि किस प्रकार पुलिसवाले और उच्च वर्ग के लोग इन गरीबों की रोटी का इन्तजाम करते हैं - ''हमारे देश की पुलिस और जाँच एजेंसियाँ इनके प्रशंसक है। दोनों के मानसिक रोगी मिलकर लाखों गरीबों को फ्री की रोटी का इंतजाम करते हैं। कई गरीब तो पुलिसवालों के पास बड़े अपराधियों की सिफारिशें लेकर आते हैं। मालिक, हमारे मोहल्ले में दो दिन पहले डकैती की वारदात में लाखों लुटे हैं। आपने एफ.आई.आर. दर्ज कर दी है। अपनी तो एक ही विनती है, हमारा नाम उसमें डाल दो। आप की तफ्तीश की किल्लत बचेगी, अपनी दाल-रोटी बनेगी। पुलिस के 'कर्तव्य-नष्ट' अधिकांश, अपनी 'ड्यूटी' के प्रति समर्पित है, जिम्मेदारी से चूकना उनके स्वभाव में नहीं है। किसी भी कामयाब नेता के तरह वे अपनी आत्मा की आवाज से विवश है। उनकी आत्मा आसानी से चुप नहीं होती है। वह चिल्लर देखकर और चिल्लाती है। आठ-दस हजार का चांदी का 'साइलेंसर' ही उसे चुप कराता है। अपनी सिफारिश करने वाले अपराधी को दुःखी जेल प्रत्याशी अधिकारी को आत्मा की आवाज के संकट का ब्यान सुनाता है। अपराधी को कई डकैतियाँ डालनी है। पुलिस को केस सुलझाने की वाह वाही लूटनी है। दोनों के पारस्परिक हित में है कि इस बेगुनाह को जेल की रोटी तोड़ने की सुविधा दी जाए।''[12] इस प्रकार निम्न वर्ग की स्थिति इतनी दयनीय होती है कि दो वक्त की रोटी के लिए वह जेल जाने को भी तैयार हो जाता है।

निम्न वर्ग के व्यक्ति के परिवार के किसी सदस्य को यदि कोई बड़ी बीमारी हो जाए तो उसके इलाज के लिए घर के सदस्य को अपने शरीर के अंगों तक को बेचना पड़ता है। निम्न वर्ग की इसी दयनीय स्थिति को समाज से रूबरू कराते हुए गोपाल चतुर्वेदी कहते हैं- ''वास्तविक जीवन का यह गरीब भी दानी प्रवृत्ति का है उसने कई बार रक्तदान किया है। एक बार पिता के इलाज के लिए वह अपनी 'किडनी'

भी एक जरूरतमंद को दान दे चुका है। दान के मर्ज में मजे ही मजे हैं। उसे किडनी दान के पूरे बीस हजार रूपये मिले थे। एक डॉक्टरने दिए, दूसरे ने पिता के इलाज में सारे के सारे ले लिए। दान की प्रवृत्ति में उसका मन संयासी और तन कृशकाय हो चुका है।''[13]

निम्न वर्ग पहले से ही शिक्षा क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है। इसलिए यह वर्ग बौद्धिक क्षेत्र में भी आगे नहीं बढ़ सका। यह वर्ग बहुत ही परिश्रमी और भोला है, जिसके कारण् आज भी वह गरीबी की जंजीरों में जकड़ा पड़ा है। इस वर्ग ने जीवन की सत्यता को सर्वोपरि माना है। इस वर्ग की एक और विशेषता यह भी है कि ये सदैव समाज के लोगों का आदर करना अपना कर्तव्य समझते हैं। देश में भुखमरी का कारण भी यही आदमखोर व्यवस्था है। अब तक के उपेक्षित तिरस्कृत व्यक्ति इस सत्य से परिचित होने लगे हैं कि ये जो सत्यवादी हरिश्चन्द्र के अवतार दानवीर कर्ण के पक्षधर और धर्मात्मा होने का दम्भ भरते हैं, उनके पीछे निर्धन मेहनतकशों के शोषण का एक लम्बा इतिहास है। श्री गोपाल चतुर्वेदी ने व्यंग्य किया है कि किस प्रकार नेता लोग निम्नवर्ग का शोषण करते हैं और मुस्कराते रहते हैं- ''आततायी के अनुसार हमारी सदाबहार नकली मुस्कान 'नेता ब्रांड' है। देश रोता रहे, गरीबों और बेगुनाहों की कितनी भी धुनाई हो, अर्थव्यवस्था चरमराए तो चरमराए, हर भारतीय के सिर पर उधार का औसत भार पचास हजार रूपये हो या उससे भी ज्यादा बढ़े, नेता को कोई वास्ता नहीं है। उसके चेहरे पर मुस्कान 'फिट' है तो 'फिट' हैं। आततायी बताते हैं कि हमारे अंतर किस तरह रोता है और हमारे चेहरे के समान नेता मुस्कराता है। उनकी मान्यता है कि अपने दुःखी दिल और मन की इस मुस्कुराहट से हम देश से एकाकार हो गए हैं। हम विवश है, असहाय है कुछ भी करने में असमर्थ है। बस आततायी जैसों की बातपर इतना ही कह सकते हैं कि दिल के बहलाने को गालिब यह ख्याल अच्छा है।''[14]

सर्वहाराकरण की यह प्रक्रिया भले ही धीमी चल रही है लेकिन वह रूकी नहीं है। औद्योगिक क्षेत्रों में कार्यरत श्रमिकों के अतिरिक्त खेतीहर श्रमिक तथा छोटे किसानों के आन्दोलनों ने देश में

समाजवादी क्रांति की ज्योति प्रज्ज्वलित की है। बिहार, बंगाल, आंध्र प्रदेश, पंजाब, केरल आदि प्रदेशों में माक्र्सवादी - लेनिनवादी पार्टी अनेक गुटों के विभक्त होने के बाद भी, यहाँ की सामंती शक्तियों से लोहा ले रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, तेलंगाना, पार्वती पुरम तथा नक्सलवाड़ी के विद्रोह इस दिशा में उल्लेखनीय रहे हैं। इन्हें शासक वर्ग ने बुरी तरह कुचल दिया, किंतु भूमिगत कार्यवाहियों की अग्नि सुगबुगाती रही और वर्तमान में भी सुगबुगा रही है। इससे भयभीत हो हमारे देश की राज्य सरकारें कृषि संबंधी सुधारों की कार्यवाही या कार्यक्रमों की घोषणाएँ भी करती रहती है। यह एक अलग बात है कि ये मात्र घोषणाएँ बनकर रह गई हैं या इनका क्रियान्वयन भी हुआ हो।

निम्नवर्गीय जनता का मानसिक विकास कम होने के कारण पूँजीपति वर्ग इनके साथ घृणित चाल चलता है। इन घृणित चालों को समझने में मजदूर वर्ग असम्भव है। वह जो बात कही जाती है उसी पर विश्वास कर लेता है। कथनी और करनी के इस अत्यधिक अंतर की वजह से वह कुटिल चालों में उलझ जाता है।

गोपाल चतुर्वेदी जी ने अपने साहित्य में तीनों वर्गों में विद्यमान समस्याओं व बुराईयों को चित्रित किया है। उच्चवर्ग अपनी विशेष सामाजिक मर्यादा भाव के कारण अन्य वर्गों से अलग ही रहता है। अपने से निम्न वर्गों के लोगों के साथ बातें करने में इन्हें अपनी मर्यादा का ख़्याल आ जाता है। झूठी शान व सामाजिक मर्यादा मानसिक संकीर्णता, ऐश्वर्यपूर्ण जीवन जन्मदिन पार्टी का भव्य आयोजन, मजदूर वर्ग के प्रति घृणाभाव, विलासिता व घृष्टता, चुनाव में विजय हेतु धन का दुरुपयोग इत्यादि विषयों पर उच्चवर्ग का नकारात्मक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया गया है। वस्तुतः उच्चवर्ग को उसकी परिवेशगत बुराईयों के साथ प्रस्तुत किया है।

3.2 संबंधों में बदलाव

सामाजिक विकृतियों का प्रभाव हमारे सामाजिक संबंधों पर पड़ता है। स्वार्थ परता और अहं की टकराहटों ने सामाजिक संबंधों को नवीन व्याख्या ही नहीं कि वरन् संबंधों के अस्तित्व पर ही प्रश्न लगा दिए हैं- ''लाला जी के साहबजादे ने जानना चाहा, अंकल! मम्मी पूछ रही है कि आप पापा को रखने का कितना पैसा लेंगे?''

एक पल को उनकी जुबान को लकवा मार गया। नई पीढ़ी के इस नुमाइंदे में अपने लक्ष्य को हासिल करने की लगन थी। उसने अपना सवाल फिर दोहराया। किडनैपर ने उल्लास के उत्साह में फोन पटका, लालाजी को राह खर्च के लिए सौ रूपये का नोट दिया, उनके हाथ और आँख पर पट्टी बाँधी पाश्र्व भाग पर प्यार से एक लात लगाई और सड़क पर छोड़ दिया। परिवार के पारस्परिक प्रेम के बारे में वह निश्चित हो गए। लाला लज्जाराम जैसे तीन-चार और खिलाड़ी परिवारों से अगर उसका साबका पड़ा तो उन्हें खेल बदलना होगा। प्रतियोगिता दिनो-दिन कड़ी होती जा रही है।''[15] अब माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहन, गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र आदि सभी संबंध स्वाथ की कसौटी पर कसे जाने लगे हैं।

आजादी के बाद पिता-पुत्र के संबंधों में बहुत परिवर्तन आया है। पहले जहाँ पुत्र पिता की हर आज्ञा का पालन करना अपना धर्म मानते थे और पिता के नियंत्रण में रहते थे, वहीं अब आजादी के बाद पिता पुत्र संबंधों में प्रजातांत्रिकता का प्रवेश हो गया है। आज का बालक पिता के नियंत्रण और अनुशासन से दूर रहना पसंद करता है और जीवन में अपने हिसाब से जीना चाहता है। ''पप्पू ने हमें ज्ञान दिया आजकल हमारी छुट्टी है 1 हर शाम को खेलने जाते हैं, तब मम्मी टोकती हैं सुबह जाएं तो आप आपा प्लीज याद रखिए आप हमारे फादर हैं जेलर नहीं 1''[16]

आज के इस युग में बेटा इतना स्वार्थी हो गया है कि पिता के बीमार होने पर वह सेवा करने की बजाय उनसे अपना पीछा छुड़ाकर भागता फिरता है। इस संबंध के विषय में गोपाल जी व्यंग्य करते हुए कहते हैं -''भजन कीर्तन का कार्यक्रम जोर-शोर से शुरू हो गया। रामदीन कुछ अस्वस्थ्य लग रहे थे। उनका चेहरा तमतमा रहा था और लाल हो चला था। उन्होंने मातादीन की ओर मुँह बढ़ाकर फुसफुसाया, बेटा तबीयत ठीक नहीं है। चक्कर से आ रहे हैं। बदन जल रहा है। मुझे डॉक्टरके पास ले चलो।

मातादीन ने उनकी नब्ज देखी, काफी तेज थी और हाथ अंगीठी-सा तप रहा था- सर्दी के बावजूद।

बस थोड़ी देर हिम्मत रखो बापू। सब ठीक हो जाएगा। कुछ ही घंटों की बात है। मातादीन ने अपने पिता को ढाढस बंधाया।

रात के साढ़े ग्यारह बजे थे। लाउडस्पीकरों के प्रभावस्वरूप वातावरण में सिर्फ बेसुरी आवाजें गूंज रही थी। भीड़, नींड और भक्ति से ओत-प्रोत थी। कार्यक्रम के अनुसार मध्यांतर में प्रसाद वितरण होना था और जनता को इसी की प्रतीक्षा थी। ठीक बारह बजे मातादीन ने खड़े होकर हाथ उठाया और चारों तरफ सन्नाटा छा गया।

अब रामबाबा नीचे आकर भक्तों को आशीर्वाद देंगे, फिर प्रसाद बंटेगा और कार्यक्रम चालू रहेगा। मातादीन ने घोषणा की।

मातादीन ने बड़ी कठिनाई से रामबाबा को टीले से नीचे उतारा। नीचे रमेश तथा अन्य लोगों की मदद से उन्हें दस कदम चलाया गया।

हाथ उठाओ, बापू। कहकर मातादीन ने उनकी बांह छोड़ दी। दूसरे हाथ की लाठी के सहारे के बावजूद रामदीन धड़ाम से गिर पड़े दीक्षित और उसके साथी 'राम बाबा अमर हो का उद्घोष करने लगे।

भीड़ अनियंत्रित होकर रामबाबा के गिरने का कारण जानने के लिए आगे दौड़ी। इस भगदड़ में रामदीन को टीले पर लाया गया। उनके प्राण पखेरू उड़ चुके थे।''[17] इस प्रकार आज के समय में मनुष्य केवल नाम और पैसे के पीछे भागता है इसके लिए उसे माता-पिता का उपयोग करना पड़े तो उससे भी पीछे नहीं रहता है और अपनी शोहरत के लिए वह माता-पिता को मृत्यु के मुँह में धकेल देता है जिसका उसे कोई पछतावा भी नहीं होता है।

आधुनिक भारत में आजकल विभिन्न दिवस मनाने का चलन हो गया है अब तो माता-पिता, भाई-बहन आदि के लिए भी साल में कोई एक विशेष दिन होने लगा है। इस 'डे' संस्कृति पर व्यंग्य करते हुए गोपाल जी कहते हैं- ''माँ-बाप से सालभर छुटकारा पाना हुआ तो 'मदर्स' और 'फादर्स डे' पर उनको कार्ड, नहीं तो बहुत हुआ तो कोई गिफ्ट दे दी और फिर बाकि दिन की छुट्टी। वह घर में बिना किसी देखभाल, उपेक्षित कूड़ा से भी बदतर हालात में पड़े रहें किसे परवाह है? उनके चेहरे की झुर्रियाँ जैसे किसी अनकही टीस और प्रखर हो गई।''[18] गोपाल जी ने घर के बुजुर्गों की स्थिति को बड़े ही मार्मिक ढंग से यहाँ प्रस्तुत किया है। जो माता-पिता अपनी संतान के पालन-पोषण में कोई कमी नहीं रखते। उनकी हर ख्वाहिश को कैसे भी करके पूरा करते हैं, वहीं संताने जब अपने पैर पर खड़ी होती है तो अपने ही माता-पिता से नौकर से भी बदतर व्यवहार करती है जो वाकई अत्यधिक निंदनीय है।

आजकल की संताने जिनके माता-पिता सरकारी नौकरी में है वे यह मनाते हैं कि रिटायरमेंट के पहले ही वे भगवान के घर पहुँच जाए, ''नौकरी के दौरान कोई मौत हो जाए तो उसके परिवार के एक सदस्य को रोजगार भी बख्शती है। इसलिये देखने में आया है कि सरकारी सेवकों की योग्य संताने प्रभु से मनाती है कि उनके बुजुर्गवार को जल्दी से जल्दी सेवा की इस सजा से वक्त के पहले ही मुक्त करो। कहीं इसके रहते सेवा का उनका मौरूसी हक न मारा जाए।''[19] अर्थात् शासन में किसी सरकारी कर्मचारी की 60 वर्ष से पहले मृत्यु हो जाने पर घर के किसी एक सदस्य को नौकरी देने का प्रावधान है। "ठीक है मैं

हमेशा के लिए चली जाऊँगी l रेखा ने फोन काट दिया l"[20] आज स्त्री रिश्ते केवल स्वार्थ से जुड़े हुए होते हैं जहाँ स्वार्थ खत्म वहाँ रिश्ता भी- ''रिश्ते-नाते, विवाह वगैरह-वगैरह सिर्फ पारस्परिक स्वार्थ साधन के बहाने है। हिस्सा लेकर बेटा बाप को ठुकराता है। उसी के घर में उसी के लिए जगह नहीं है। बूढ़े-बूढ़िया नौकर के क्वार्टर में गुजारा करें, तब तक कि घर में नौकर नहीं है। भाई-भाई के इतने सगे हैं कि बस चले तो एक-दूसरे का गला घोंट दें। वह तो कुछ हिम्मत की कमी है, कुछ कानून का डर है कि सिर्फ बोलाचाली है। एकदूसरे को देखते हैं तो मुँहफेर लेते हैं।''[21]

इस प्रकार गोपाल जी ने समाप्त सी हो रही मानवीय संवेदनाओं, संबंधों में अलगाव आदि को अपने व्यंग्य लेखन का विषय बनाकर बखूबी उसके साथ न्याय किया है।

3.3 नारी के प्रति समाज का दृष्टिकोण

नारी का शोषण कर उसके प्रति वासनामय दृष्टि रखना आज पुरुषों का स्वभाव बन गया है। वे नारी संघर्ष मुक्ति और स्वतंत्रता के नाम पर असल में नारी का शोषण और उसका भोग करते है। आज की नारी पुरानी पारंपरिक रूढ़ियों को तोड़ते हुए चूल्हे चैके की दुनिया से बाहर आकर पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने के लिए तैयार है लेकिन इसके लिए उन्हें अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। गोपाल जी ने नारी पूजा के नाम पर किए जाने वाले शोषण पर व्यंग्य करते हुए कहा है- ''बस, रामदीन जी, हम दोनों की इज्जत का सवाल है। जैसे ही आपको नई चिड़ियाँ दिखे, हमारे पिंजरे में ले आना। कहीं युवा टोल ने उन्हें फंसा लिया तो हम सबकी भद होगी। ऐसे भी इन नए लड़कों का क्या भरोसा। कहीं आलतू-फालतू छेड़छाड़ कर दी तो सारे दफ्तर की बदनामी है।''[22] अर्थात् आज स्त्री पढ़-लिखकर समाज में दफ्तर में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है तो कुछ पुरुषों से यह बात सहन नहीं हो रही। वे यही

चाहते हैं कि घर हो या दफ्तर स्त्री-पुरुष के ही अधिकार में रहे। उसका स्वतंत्र रूप से अपना कोई अस्तित्व ही न हो।

इसी प्रकार नारी कल्याण के नाम पर चलाए जा रहे आश्रमों की हकीकत का पर्दाफाश करते हुए कहा है- ‘‘अनाथालय, विधवाश्रम, नारी निकेतन इत्यादि ऐसी अनेक सामाजिक संस्थाएँ हैं जहाँ हर उम्र की नारी उचित दाम पर मिल जाती है। कुछ संस्थाएँ इस दिशा में इतनी निःस्वार्थ होती हैं कि उनके एवं सामान के नापसंद आने पर अदल-बदल करने की समुचित सुविधा प्राप्त होती है।’’[23] अर्थात् हम कह सकते हैं कि आज भी समाज में नारी को सामान के रूप में देखा जाता है पुरुषों की नज़र में वह एक सामान से अधिक कुछ भी नहीं है जिसे कभी भी खरीदा जा सकता है और पसंद न आने पर उसे फेंका या वापस भी किया जा सकता है।

महिलाओं को इंप्रेस करने के लिए युवा तो युवा दफ्तर के उम्रदराज लोग भी पीछे नहीं रहते हैं वह स्वयं को किसी नवयुवक से कम नहीं समझते हैं- ‘‘हम अपनी चुस्त-दुरुस्त पतलून-शर्ट, सात नकली दांत, सुरक्षित चांद व्यवस्था से लैस होकर घर से दफ्तर पहुँचते हैं। अभी तो नई-नई लड़कियाँ मरती हुई है। यही मौका है उन्हें इंप्रैस करने का। कहीं हमारे युवा सहयोगियों ने हमसे पहले उन्हें ‘हथिया’ लिया तो अपना भविष्य अंधकार मय हो जाएगा आधुनिक पीढ़ी ‘हैलो’ कहती है और हाथ मिलाती हैं कहीं देर हुई तो हम तो नमस्कार करते रह जाएंगे।’’[24]

हमारे समाज में बुरी तरह से वासना फैल रही है। हर कोई नारी का शोषण करना चाहता है। यदि वह इस शोषण के खिलाफ आवाज उठाती है तो समाज उसे ही बदचलन कहकर उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। नारी के प्रति समाज के इसी अन्याय पर व्यंग्य करते हुए गोपाल जी कहते हैं- ‘‘जाने हमारे देश को क्या हो गया है फूलनदेवी जैसी नारियों ने नाइंसाफी के खिलाफ अपनी जान हथेली पर रखकर सालों साल जंग लड़ी है। एकाएक उनका हृदय परिवर्तन हो गया। उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया।

क्या उनका स्थान जेल में है? कुछ लीडर सही फरमाते हैं कि यह पिछड़ों के खिलाफ अगड़ों की साजिश है। क्या यही सामाजिक न्याय है? जब तक ऐसी महिलाओं को शासन उनका उचित हक नहीं दिलाएगा, मुल्क कैसे तरक्की करेगा? देश की नारी शक्ति का विकास कैसे होगा? क्या हम चाहते हैं कि औरत-आदमी की असमानता और दहेज जैसी कुरीतियाँ चालू रहे? अगर ऐसा नहीं है तो साहस की प्रतीक और संघर्ष में पली फूलनदेवी को संसद में क्यों नहीं लाया जा सकता? उनकी मिसाल से महिलाएँ प्रेरणा लेंगी यह जरूरी नहीं है कि सबको यह सुलभ हो। कम से कम इतना तो होगा कि पतियों के अन्याय का मुकाबला करने के लिए पत्नियाँ बेलन और झाड़ू उठा ले।''[25]

इन पंक्तियों के माध्यम से व्यंग्यकार समाज में उपेक्षित, पिछड़ी नारी को जागृत करना चाहता है। वह उसे समाज में एक स्थान दिलाने के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा देने का कार्य कर रहा है।

इस प्रकार गोपाल चतुर्वेदी में नारी के साथ हो रहे अन्याय एवं अत्याचारों को समाज के सामने प्रस्तुत कर वर्षों से परम्पराओं और रुढ़ियों की बेड़ियों में जकड़ी हुई नारी को जागृत कर समाज में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिए प्रेरित किया है।

3.4 सामाजिक रूढ़ियाँ

आजकल रीति-रिवाजों का निर्माण समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप किया जाता है। कालान्तर में इनका उद्देश्य समाप्त हो जाता है। परिस्थितियों के बदलने के साथ उसकी प्रतियोगिता भी नगण्य हो जाती है। जो रूढ़ियाँ कभी स्वस्थ्य परम्परा के रूप में समाज को नया जीवन देने वाली थी, वे ही बदली हुई परिस्थिति में हमारे विकास में बाधा डालने लगती है। तब उनसे मुक्त होकर चलने में ही हमारा विकास संभव है।

दहेज-प्रथा आधुनिक समाज का कलंक है। समाज के लिए एक अभिशाप है लेकिन जब इसका आरम्भ हुआ था तब माता-पिता अपनी सामथ्र्य के अनुसार स्वेच्छा से नवदम्पत्ती के जीवन को सुखमय बनाने के लिए अपनी कन्या को उसके गृहस्थ जीवन के लिए उपयोगी समाज को भेंट स्वरूप देते थे। धीरे-धीरे प्रतिष्ठा और शान के लिए कन्या के विवाह में धन और अन्य सामान देने का प्रचलन बढ़ा, फिर स्वेच्छा का स्थान अनिवार्यता ने ले लिया और फिर यह रूढ़ि बन गया। आज के इस दौर में इसने दहेज रूपी राक्षस के रूप में सबको अपना शिकार बना लिया है। आज बेटे का विवाह करते समय माता-पिता यह भूल जाते हैं कि उनकी भी बेटी है या फिर उन्हें ऐसा लगता है कि हमने अपनी बेटी को खूब दहेज देकर विदा किया है तो हमारे घर बहू भी अच्छा दहेज लेकर आये। पुत्र के विवाह के लिए उसके माता-पिता दहेज में मिलने वाले समान की लम्बी फेहरिस्त बनाकर लड़की वालों को पकड़ा देते है। यदि लड़के वाला उतना सामान देने में असमर्थता जाहिर करता है तो वे वहाँ से या तो रिश्ता तोड़ लेते हैं या फिर विवाह के बाद बहू को इतनी यातनाएँ तथा प्रताड़नाएँ देते हैं कि वह या तो अपने पिता के घर से दहेज लाने के लिए मजबूर हो जाती है या फिर आत्महत्या करके अपनी जीवन लीला ही समाप्त कर लेती है। आजकल के माता-पिता अपने पुत्र के प्रेम विवाह से बहुत डरते हैं उन्हें ऐसा लगता है कि यदि उनका बेटा प्रेम विवाह कर लेगा तो उन्हें दहेज में नहीं मिलेगा और उनके संजोए सपने मिट्टी में मिल जाएगा। इस पर व्यंग्य करते हुए गोपाल जी लिखते हैं- ‘‘वे कच्ची उम्र के नासमझ जवान हैं। कहीं पड़ोसन से प्यार करने लगे तो दहेज का क्या होगा? हमने तीनों की शादी का हिसाब लगा लिया है। पहले के विवाह में जमीन, दूसरे से उसमें निर्माण और तीसरे से सजावट का सामान आना है। एक भी भटका तो अपना तो बुढ़ापा गड़बड़ा जाएगा।’’[26] इसीलिए आजकल के माता-पिता पुत्री से अधिक पुत्र के प्रेम विवाह करने से डरते हैं उन्हें ऐसा लगता है कि यदि पुत्र प्रेम विवाह कर लेगा तो बेटा और पैसा दोनों उनके हाथ से जाएगा।

दहेज के कारण बारात कभी-कभी दुल्हन के बिना वापस लौट जाती है। इस प्रकार की घटनाएँ हमारे आस-पास में निरंतर घटती नज़र आती है। दहेज के लोभी लोग एक-एक पैसे का हिसाब जोड़कर रखते हैं इस पर गोपाल चतुर्वेदी कहते हैं-''मैंने उन्हें समझाया कि एकमुश्त पूँजी का अपना महत्त्व है। चार-पाँच लाख का दहेज मिलता तो अब तक के ब्याज का जोड़ निशा की तन्ख्वाह से अधिक होता है फिर घर-खर्च में बचत होगी वह अलग।''[27] इस प्रकार दहेज लोभी पहले से ही दहेज में मिलने वाली रकम और सामान का किस प्रकार का उपयोग करना है उसी की प्लानिंग किया करते हैं।

दहेज की समस्या ने आज एक विकराल रूप धारण कर लिया है। आज बेटी का पिता होना एक अभिशाप सा है। आज स्त्री को कानूनी रूप से समानता का अधिकार है किंतु अभी भी वह केवल कागज तक ही सिमट कर रह गया है व्यवहार में नहीं आ पाया है। अभी भी समाज में पुरुष का स्थान स्त्री से ऊँचा है। इसी असमानता पर परसाई जी तीखा व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि -''मैं बाईस से तेइस बरस की हो गई, तो उनके (पिता) हृदय पर एक मन वजन और बढ़ गया। वे जगह-जगह विवाह की बात चलाते, पर हर बार लड़के वालों की मांग उनके सामथ्र्य की सीमा लांघ जाती। वे सब लोग हाथ में तराजू लिए थे, जिसके तलवे पर बेटों को रखे थे। मुझे मेरी समस्त विद्या, बुद्धि और सौंदर्य के साथ दूसरे पलड़े पर रखकर देखते, तो हर मेरा ही पलड़ा हल्का पाते। तब पलडे बराबर करने के लिए, मेरे साथ रुपयों का वजन रखने को कहते।''[28] समाज में दोहरे मानदंडों के चलते स्त्री अपने पिता पर बोझ बन जाती है। आज बाजार में लड़के बिक रहे हैं इस पर गोपाल जी भी व्यंग्य करते हुए कहते हैं-''हिया से डॉक्टरब्लेड प्रेशर नापते हैं। पिया दहेज में बिकते हैं।''[29] ... इस दोहरे मानदंड वाले समाज में शादी के लिए लड़का बिकता है उसकी बोली लगाई जाती है जो लड़का जितना पढ़ा-लिखा और जितनी अच्छी नौकरी में होता है उसे दहेज के रूप में उतना अधिक पैसा और सामान मिलता है। लड़के के माता-पिता का तर्क यह रहता है कि हमने अपने लड़के की पढ़ाई में इतना पैसा खर्च किया है तो हमें दहेज भी उस पढ़ाई का सारा खर्च चाहिए।

लेकिन आज के समय में क्या लड़की के माता-पिता उसे नहीं पढ़ाते या फिर लड़की की पढ़ाई में वैसे खर्च नहीं होते। आज की लड़कियाँ भी तो उच्च शिक्षा प्राप्त अच्छे स्थान और पद पर नौकरी कर रही हैं। फिर लड़की के माता-पिता लड़के वालों को धन या दहेज देकर शादी क्यों करें, लेकिन आज के समाज जैसे-जैसे लोग शिक्षित होते जा रहे हैं वैसे-वैसे उनका लालच भी बढ़ता जाता है।

भारतीय समाज में दहेज के अलावा बाल विवाह, अनमेल विवाह आदि अनेक ऐसी पारम्परिक रूढ़ियां है जो आधुनिक युग में भी समाज में अपना पूर्ण वर्चस्व स्थापित किए हुए हैं। जिन्हें जड़ से मिटाना सचमुच बहुत चुनौतीपूर्ण कार्य है। विज्ञान ने आज अत्यधिक प्रगति कर ली है। जिसके कई दुष्परिणाम भी समाज में देखने को मिल रहे हैं। जैसे कि गर्भ में पल रहा शिशु लड़का है या लड़की इसका पता लगाना बहुत ही आसान हो गया है। लोग गर्भ में पल रहे शिशु की जांच कराकर कन्या भ्रूण की हत्या करा देना भी समाज में आज आम बात है। समाज की इस असंवेदनशीलता पर व्यंग्य करते हुए गोपाल चतुर्वेदी कहते हैं-''यह जो हमारा सभ्य संवेदनशील समाज है कन्या भ्रूण की असमय हत्या तक पर ऊँगली नहीं उठाता है।''[30] अतः पहले कन्या के जन्म लेने पर उसे जिंदा ही जमीन में गाढ़ दिया जाता था या फिर गला दबाकर उसे मार दिया जाता था, किंतु आज तो मां के गर्भ में ही उसे समाप्त कर दिया जाता है जो अत्यंत ही अमानवीय कार्य है।

इन रूढ़ियों के अतिरिक्त समाज में आज भी धार्मिक रूढ़ियां अपनी गहरी पैठ बनाए हुए हैं। भारतीय समाज व्यवस्था मूलतः धर्माश्रयी रही है धर्म ही, परम्परा से, सामाजिक जीवन के कार्यों और व्यक्ति के उद्देश्यों का निर्धारण एवं नियंत्रण करता रहा है। भारतीय चिंतन पर आरम्भ से ही धर्म का बहुत गहरा प्रभाव रहा है। भारत में जितने भी आंदोलन हुए उनमें धर्म की उपस्थिति को आसानी से देखा जा सकता है। यहां तक की उन्नीसवीं सदी के सुधार एवं नवजागरण आंदोलन में भी धर्म के नाम पर केवल और केवल आडम्बर ही हो रहे हैं। धर्म की आड़ में लोग कैसे-कैसे काम कर रहे है। इसको लक्ष्य करते

हुए गोपाल जी कहते है।-''बम बाबा अखण्ड जागरण के नाम से चंदे की किताबें और अखबारों में विज्ञापन छपे-नीम के पेड़ के नीचे बने पक्के टील पर पालथी मारे बैठे राम बाबा के चित्र के साथ। देश कितना भी गरीब क्यों न हो, धर्म के नाम पर चंदा देकर पापों का प्रायश्चित करना हमारी पुरानी परम्परा है। किसी भी बंटाने दस-बारह हजार अटक लेना रमेश और दीक्षित के बाएं हाथ का खेल था। मातादीन समारोह के आयोजन की थकान चंदे के पैसों की शराब पीकर मिटाते रहे। शहर के महत्वपूर्ण व्यक्तियों को अखण्ड जागरण का निमंत्रण भेजा गया, ज्ञाननाथ जी तो मुख्य अतिथि थे ही। विश्वविद्यालय के परिसर में मुफ्त पूड़ी-हलवा की खूब पब्लिसिटी हुई। पूरे शहर में रामबाबा के चित्रों के साथ अखण्ड जागरण के पोस्टर लगाए गए हैंडबिल बांटो गए। ऐसा लगा मानो एक छोटे-मोटे कुंभ का आयोजन हो रहा हो। एसप्रेसों से लेकर चाय-नमकीन के ठेले तक धर्म की गंगा में हाथ धोने टैगोर टाउन में जा पहुँचे।''[31] इस प्रकार धर्म की आड़ में कुछ लोग भोली-भाली सामान्य जनता से ठगी करते रहते हैं।

आज मंदिर में भी लोग पाखण्ड करने से नहीं चूकते हैं मंदिर के पुजारी हो या संत महात्मा सभी का एक ही सपना मंदिर में चढ़ रहे चढ़ावे से ऐशो आराम की जिंदगी व्यतीत करना आज मंदिर को भी उद्योग का रूप लेते देखा जा सकता है। इस सच्चाई से पाठक रूबरू कराते हुए 'नित्य ही आनन्द' लेख में शरद जोशी का एक दृष्टांत उल्लेखनीय है-''हिंदू धर्म के प्रभाव का क्षितिज चाहे दिन प्रतिदिन सिमट रहा तो, हिंदू धर्म के महन्त, मठाधीश के खामियों के प्रभाव का क्षितिज भारतीय सीमा से कहीं आगे हैं किसी भी गुरु से पूछे तो वह कहेगा कि ईमानदार चेले और समर्पित चेलियाँ भारत में आजकल मिलते कहाँ हैं? .... धर्म न हुआ उद्योग और टेक्नोलाजी हुई जो बिना अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के पपन नहीं सकती। हमारे कुछ प्रतीक जैसे राम, ओम, हरेकृष्ण, रूद्राक्ष, शिवलिंग, तुलसीमाला, योग आदि की जैसी खपत संसार के समृद्ध बाजारों में हैं, वैसे आजकल भारत के धार्मिक नगरों में भी नहीं है।''[32] धर्म के नाम पर सिर्फ पैसा और स्वार्थ ही बढ़ता जा रहा है। जनता आँखें खोलकर भी मूर्ख बन रही है और उसे इसका कोई अफसोस

भी नहीं है। धर्म ढाल बनाकर स्वार्थ साधने की प्रवृत्ति की ओर इशारा करते हुए गोपाल जी भी कहते हैं- ‘‘पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार फावड़े लिए लोग अचानक प्रकट हो गए। खुदाई प्रारम्भ हो गई। भक्तों की भीड़ सकपकाई हुई यह कारवाई देख रही थी। मातादीन सिर झुकाए बाबा के शव के पास बैठे थे। माइक पर रमेश और दीक्षित मिलकर रामबाबा अमर रहे का नारा लगा रहे थे। यकायक एक खोदने वाले ने पत्थर का शिवलिंग निकाल कर सबको दिखाया।

दीक्षित माइक पर बोले, ‘‘चमत्कारी रामबाबा दूसरों ने जोड़ा, ‘‘अमर रहे।

शिव, शंभु, शंकर महेश्वर को धांधलेश्वर में बदल दिया गया था। .... कल धूमधाम से राम बाबा को संगम ले चलेंगे। भक्तों की भावना को अभी और ‘कैश’ किया जा सकता है।’’[33] इस प्रकार आज के युग में मृत व्यक्ति को भी लोग धर्म के नाम पर कैश करा कर जनता की भावना से खिलवाड़ करते हैं। .... आज के इस वैज्ञानिक युग में लोग अब भी बीमारियों में डॉक्टरसे ज्यादा भगवान पर विश्वास करते हैं इसका एक उदाहरण गोपाल चतुर्वेदी इस प्रकार देते हैं-‘‘डॉक्टर दूसरे दिन भी आए और दूसरे दिन भी हमारा पेट अपने असहयोग पर डटा रहा। संकट के समय सबको प्रभु याद आते हैं। हमारी पत्नी ने मंदिर जाकर हनुमान जी को एक सौ एक रूपये का प्रसाद चढ़ाने की रिश्वत दी। हमने उन्हें समझाया कि इस मामले में इंसान भगवान के मुकाबले काफी तरक्की कर गया है। कहीं ऐसा तो नहीं कि उन्हें मंदिर के ताखे रेट पता न हो और प्रभु की कृपा में चढ़ावे की कमी बाधा डाल दे। खाना-पीना बंद होने से अब तक हम सन्निपात जैसे तंद्रा में रहने लगे थे।’’[34] इस प्रकार आज भी लोग धार्मिक अंधविश्वासों से उभर नहीं पाए हैं। घर में कोई बीमार हो, कोइ मानसिक रूप से अस्वस्थ्य हो लोग आज डाक्टर के पास जाने के बजाए ढोंगी बाबा के पास पहुंच जाते हैं उन्हें लगता है कि ये बाबा चमत्कार के द्वारा उनकी सारी समस्याएं समाप्त कर देंगे। इसके चलते इन चमत्कारी ढोंगी बाबा के चक्कर में पड़कर लोग किसी बच्चे की बलि वगैरह देकर जघन्य अपराध तक कर डालते हैं। महिलाएं इन बाबा के दुष्कर्म का शिकार भी हो जाती है।

फिर भी धर्म के नाम पर हो रहे इन पाखण्डों और अंधविश्वासों में पड़कर लोग अपना ही नुकसान करते हैं। सबसे ज्यादा आश्चर्य चकित करने वाली बात तो यह है कि पहले के लोग कम पढ़े-लिखे होते थे अतः इन रूढ़ियों और पाखण्डों पर विश्वास वे बड़ी ही सरलता से कर लेते थे। किंतु आज के इस शिक्षित समाज में भी धार्मिक रूढ़ियां, पाखण्ड अंधविश्वास अपनी गहरी पैठ बनाए हुए है और समाज के हर वर्ग के लोग चाहे वो उच्च वर्ग के हो, मध्यम वर्ग के या निम्न वर्ग, शिक्षित हो या अशिक्षित, धनाढ्य हो अथवा निर्धन सभी इसके शिकार हैं।

हमारे समाज में अनेक रीतियां-कुरीतियां परम्परा से चली आ रही है जिन्होंने रूढ़ियों का रूप ले लिया है।गोपाल चतुर्वेदी का मानना है कि समय के साथ समाज के रीति रिवाजों, नियमों आदि में परिवर्तन निश्चित होना चाहिए। हमारा समाज आज भी रूढ़ियों को उसी प्रकार अपने से चिपकाए हुए हैं जिस प्रकार बंदर अपने मरे हुए बच्चे को सीने से चिपकाकर घूमते हैं। इन्होंने धार्मिक कर्मकाण्ड, रूढ़ियों, अंधविश्वासों, पाखण्ड आदि को एक प्रगतिशील समाज के निर्माण में सबसे बड़ी बाधा मानते हुए पूरी ईमानदारी और प्रतिबद्धता के साथ इन पर आक्रामक प्रहार किया है। एक जिम्मेदार सामाजिक प्राणी के रूप में इन्होंने समाज की विकृत मान्यताओं रूढ़ियों को समाज से हटाकर फेंकने का पूर्ण प्रयास किया है।

3.5 शिक्षा संबंधी :

शिक्षा किसी भी सभ्य समाज की अनिवार्य शर्त है। सच तो यह है कि किसी भी समाज को सभ्य एवं प्रगतिशील बनाने में शिक्षा की उल्लेखनीय भूमिका रही है। हमारे देश में सामाजिक आर्थिक चेतना का सही विकास, समाज की एक बुनियादी आवश्यकता के रूप में शिक्षा के व्यापक प्रसार के बाद ही संभव हुआ। देश में धार्मिक एवं सामाजिक अंधविश्वासों, रूढ़ियों, कुरीतियों, एवं कुप्रथाओं के खिलाफ जो संघर्ष हुए, उसमें शिक्षा की शक्ति के स्पष्ट दर्शन होते हैं। किंतु सामाजिक व्यवस्था को एक अंग होने के कारण समाज के लोगों में निहित दोषों के कारण शिक्षा व्यवस्था में भी अनेक विकृतियाँ एवं खामियाँ आ

जाना स्वाभाविक है जिसके फलस्वरूप मौजूदा शिक्षा व्यवस्था की अप्रासांगिक एवं अनुपादेयता परिलक्षित होने लगती है।

आजादी के बाद शिक्षा-संस्थानों की बाढ़ ने ही शिक्षा के स्तर को गिराया है। अब ये संस्थान विद्या के केन्द्र न रहकर दुकानों में तब्दील होते जा रहे हैं। शहर के हर गली कूचे में एक प्राइवेट शिक्षा संस्थान नजर आ जाता है। इन संस्थाओं का उद्देश्य शिक्षा प्रदान करना नहीं बल्कि सिर्फ पैसे कमाना ही है। शिक्षा संस्थानों की इस दुकानदारी पर सटीक प्रहार करते हुए गोपाल चतुर्वेदी कहते हैं-''मेरी पत्नी ने मन ही मन घर के असंतुलित बजट का हिसाब लगाया और साहस जुटाकर बच्चे के लिए सब त्यागने की मुद्रा में बोली, यही सौ दो सौ। सॉरी मिसेज चैबे। हम हजार से कम के डोनेशन एक्सेप्ट नहीं करते प्रिंसिपल महोदय ने निर्णय सुनाया।''[35] आजकल स्कूल में बच्चे को दाखिल करने के लिए भी डोनेशन के नाम पर मोटी रकम की आवश्यकता पड़ती है- ''प्राचार्य जी जरूर दयालु रहे ओगे। कहने लगे, मिस्टर चैबे। मैं आपकी हेल्प करना चाहता हूँ। पर आपको सोचना चाहिए कि आप स्कूल के लिए क्या कर सकते हैं। तभी तो स्कूल आपके बेटे के लिए कुछ करेगा। आप कैश नहीं दे सकते मत दीजिए पर और क्या कर सकते हैं ...... मैं समझा नहीं। मैंने मार्शली आवाज में उत्तर दिया।

देखिए हम लोग सा◌ॅवेनियर निकालने वाले हैं। उसमें आप आठ फुल पेज के एड कलैक्ट कर दिलवा दीजिए। उन्होंने एक हाथ से घंटी बजाते हुए कहा।

.....अच्छा मिस्टर चैबे। गुड डे। एक हफ्ते तक विज्ञापन दिलवा दें, हमारे यहाँ एडमीशन टेस्ट पंद्रह दिन बाद है। उसके बाद चाहें तो आप कॉल-लेटर पर्सनली ले जाएँ। प्रिंसिपल साहब ने इंटरव्यू समाप्त किया।

हमलोग बाहर आए। प्यास से गला सूख रहा था। पेट में चूहे उछल-कूद कर रहे थे।

पत्नी बोली - बड़ी भूख लगी है।

मैंने अनायास पूछा, क्या इस प्रिंसिपल को भूख नहीं लगती?

इसे खाना खाने की जरूरत नहीं है। यह तो डोनेशन खाता है या विज्ञापन।''[36] एडमिशन के पीछे डोनेशन के इस खेल को बड़े ही रचनात्मक ढंग से जनता के सामने पेश किया हैं इतना ही नहीं इतनी डोनेशन देने के बाद, बच्चे की पढ़ाई पर पैसा पानी की तरह बहाने के बाद इन संस्थानों में जो शिक्षा दी जाती है उससे बच्चे क्या सीखते हैं इसका बड़ा ही रोचक उदाहरण गोपाल जी पेश करते हैं-''पब्लिक स्कूल में कबीर ने पढ़ाई के अलावा सब कुछ कियां उसने स्कूल की परीक्षाएं पास करने को, पेपर की चोरी से लेकर नकल तक में महारत हासिल की। उसे यह भी अहसास हुआ कि जैसे परीक्षा में प्रश्न पत्र और उसका उत्तर जानना जरूरी है वैसे ही खुशहाल जिंदगी के लिए ताकत और सत्ता।''[37] अर्थात् वे प्राइवेट पब्लिक स्कूल अभिभावकों से केवल पैसे चूसना जानते हैं। शिक्षा और संस्कार के नाम पर वे बच्चों को पूरी तरह से नकारा बना देते हैं। बच्चे भी अपने माता-पिता को नए जमाने की टेक्नालाजी कम्प्यूटर, सैल फोन आदि की पढ़ाई में उपयोगिता बताते हुए उनसे ये सब खरीदने की मांग करते हैं। माता-पिता किसी प्रकार इन महंगे उपकरणों को बच्चों के लिए खरीदते हैं। वही बच्चे इनसे पढ़ने की बजाए कमरा बंद करके अपना मनोरंजन करते हैं। नंबर कम आने पर ये माता-पिता को कैसे दोषी बनाते हैं इसका उदाहरण इस प्रकार है- ''इम्तिहान के नतीजे आ चुके हैं। एक कंप्यूटर वाले लल्लू और एक बिना कंप्यूटर वाले गप्पू ने मोहल्ले का नाम रोशन किया है। हमारे पप्पू मैरिट में कहीं जाती है। जैसा स्वाभाविक है, वह अपनी असफलता के लिए हमें दोष देते हैं। बिना सैल और साथियों की सलाह के वह परीक्षा की चुनौती कैसे झेलते। हम कैश खर्च करके भी उल्लू बन चुके हैं। इस युग में उल्लू बनना तो अपने जैसों की नियति है हमने उम्मीद अभी भी नहीं छोड़ी है। कौन कहे गुडमोर्र्निग तथा उपभोक्ता संस्कृति में पारंगत होकर पप्पू कोई कमाल कर ही डाले।''[38]

हमारे देश की यह बड़ी विडम्बना है कि यहाँ प्रत्येक कार्य में छल-कपट ढोंग का समावेश होता रहा है। संविधान में चैदह वर्ष तक के बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुक्ल शिक्षा का प्रावधान है; लेकिन आज तक यह व्यवस्था व्यवहारिक रूप नहीं प्राप्त कर सकी। बच्चे या बड़े और नामी स्कूल में एडमिशन कराना आजकल सोसायटी में माँ बाप की हैसियत को दर्शाता है और इन बड़े स्कूलों में दाखिले के लिए बच्चों के माता-पिता को डोनेशन तो देना ही पड़ता है। इस व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए शरद जोशी भी कहते हैं-‘‘मौसम आ गया कि जब भारतीय माता-पिता अपने बच्चों को एडमिशन दिलाने के लिए स्कूल के दरवाजों पर नम्र गाय की मुद्रा में आ खड़े हुए। जितना नामी स्कूल, उतनी मुद्रा अधिक। बच्चे की जिंदगी तो बन जाएगी पर बाप की इज्जत का क्या होगा? यदि उनका बच्चा साधरण स्कूल का छात्र हुआ तो जमाना क्या कहेगा।’’[39] अर्थात् कुल मिलाकर आज पढ़ाई का उतना महत्व नहीं रह गया है स्कूलों में जितना डोनेशन का।

आज कल पब्लिक स्कूलों की बाद ने अंग्रेजी भाषा को बहुत ही ऊँचे स्थान पर स्थापित कर दिया है। अंग्रेजी भाषा इस को सभ्य समाज के पढ़े लिखे लोगों की भाषा माना जाने लगा है इसलिए अपने बच्चे को लोग अंग्रेजी के ज्ञान के लिए पब्लिक स्कूलों में भेजना चाहते हैं और सरकारी स्कूलों से कन्नी काटते हैं-‘‘यों प्रधान अपने कबीर की कीर्ति से अंदर ही अंदर प्रभावित थे। गाँव के पोखर में उनका पुत्र पड़ा रहा तो अधिक से अधिक प्रधान बन जाएगा, एक दिन। वहीं किसी पब्लिक स्कूल में गया तो क्या पता देश के सियासी क्षितिज पर सूरज बनकर उभरे। बड़के नेता सारे अंग्रेजों में गिटिर-पिटिर करते हैं। हिंदी वोट मांगने की ही क्यों, भिखारियों की ही भाषा है। अंग्रेजी सत्ता के जलवे की ज़ुबान है। हिंदी जो गौ-मैया बहूपयोगी है। पर डरते लोग सत्ता में छाए अंग्रेजी सांड से ही है।’’[40] हिंदी की आज अत्यधिक उपेक्षा हो रही है प्राइमरी स्कूलों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो गया है और आज के बच्चे तथा अभिभावक दोनों ही सिर्फ अंग्रेजी शिक्षा के पीछे भाग रहे हैं। अंग्रेजी की इस अंधी दौड़ पर नरेन्द्र कोहली

पर भी व्यंग्य करते हुए कहते हैं-''वह और नाराज होकर बोला कि वह अपने बच्चे को लेकर एक पब्लिक स्कूल में गया था, पर उन लोगों ने उसके बच्चे को प्रवेश नहीं दिया, क्योंकि बच्चे के बाप को अंग्रेजी नहीं आती। अंत में वह बहुत नाराज होकर बोला आप ही बताएं अंग्रेजी देश को शिक्षित बनाने का माध्यम है या देश को मनपढ बनाए रखने का साधन? ...मैंने उससे पूछा, पढ़ाई जरूरी है कि व्यवस्था? ...... इसलिए समाज की व्यवस्था के लिए अंग्रेजी का होना बहुत आवश्यक है। अंग्रेजी ही हमारे समाज की व्यवस्था को चला रही है।''[41]

स्कूलों की तरह ही विश्वविद्यालयों का भी यही हाल है। स्कूल में एडमिशन और अच्छे अंकों से पास होने के लिए बच्चे के माता-पिता के पास मोटी रकम होनी चाहिए और विश्वविद्यालय में प्रवेश के पश्चात सफलता प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी में चाटुकारिता का गुण होना चाहिए। विश्वविद्यालयों में प्रवेश के पश्चात् शोधार्थियों को गुरु जी की किस-किस प्रकार से सेवा करनी पड़ती है गोपाल जी इसे बखूबी बयान करते है।-''वर्मा सर ने ज्ञान दिया कि शोध और सेवा से मकड़ी और जाले, तोप और गोले अथवा सब्जी और झोले जैसा जन्म-जन्मान्तर का साथ है। जो साहसी शोध की लादी अपने कंधे पर लादता है उसे सेवा का भार भी वहन करना पड़ता है। गुरु की चरण सेवा, उनके बच्चों की टाफी या रूचि के अनुसार मिठाई सेवा, गुरुआइन की आज्ञा पर छुट-पुट बाजार-सेवा आदि शोध से पी-एच.डी. को ऊँचाई पाने की अनिवार्य सीढ़ियाँ है। यों इसके बड़े फायदे हैं। मन में सेवा की भावना जगती हैं मुल्क और सोसाइटी की खिदमत करने कराने की रिहर्सल होता है। छड़ों का पारिवारिक जीवन की जिम्मेदारियों में गृह प्रवेश हो जाता है। उजड़ों यानी शादीशुदा लोगों की नियमित प्रैक्टिस होती है। इसीलिए पीएच.डी. की डिग्री पाए व्यक्ति सफल कामकाजी और उपयोगी पति साबित होते हैं।''[42] अतः हम देख सकते हैं कि शिक्षा का स्तर कितना गिर चुका है स्कूल से लेकर विश्वविद्यालयों तक विद्यार्थी का पढ़ाई लिखाई से कुछ मतलब हो न हो चापलूसी में वो माहिर होना चाहिए। इससे गुरु-शिष्य संबंध भी अच्छे होंगे, परीक्षा

में अच्छे अंक भी मिलेंगे और गुरु की ऐसी सेवा से आपके प्रति उनका प्रेम और सहानुभूति अन्य छात्रों की अपेक्षा आपके प्रति अधिक होगी। अध्यापक छात्र संबंध पर प्रकाश डालते हुए हरिशंकर परसाई भी कहते हैं-''विभाग में काम करने का उनका अपना एक तरीका था। वे शोध करवाते थे। शोध-छात्र लेने में वे एक सिद्धांत का पालन करते थे। एक गल्ला व्यापारी का लड़का लेते, एक कपड़ा व्यापारी का, एक हौजरी के दुकानदार का फिर कोई जगह बचती तो सब्जी के व्यापारी के लड़के को ले लेते। कभी धी और किराना व्यापारी के लड़के को भी चांस मिल जाता।''[43] अर्थात् शिक्षक शोध के लिए उसी छात्र का चुनाव करते हैं जिनसे उसे हर प्रकार से लाभ मिल सके।

छात्र अध्यापक के संबंधों पर अश्विनी कुमार दुबे भी चर्चा करते हैं-''कुमारों, यह विश्वविद्यालय तुम्हारी कर्म-स्थली है। यहाँ तुम्हें जीवन का व्यावहारिक ज्ञान मिलेगा। हाँ सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए यहाँ किसी न किसी प्राध्यापक से ट्यूशन पढ़ना जरूरी है। ट्यूशन पढ़ने के लिए प्राध्यापक का चुनाव बहुत सोच-समझकर करना चाहिए। जिस प्राध्यापक से भविष्य में विभिन्न प्रकार के लाभ लिया जा सकें, वह ट्यूशन के लिए उपयुक्त होता है। ट्यूशन पढ़ाने वाले बहुसंख्यक प्राध्यापक अपनी जिम्मेदारी भली-भांति समझते है। वे अपने विद्यार्थियों को पढ़ाने के अलावा पुस्तकालय से किताबें अपने नाम से दिलवाते हैं। परीक्षा के समय पेपर आउट कराने से लेकर, नकल करवाने और नंबर बढ़वाने तक, उनकी अनिवार्य सेवाएँ ट्यूशन के अंतर्गत मानी जाती है।''[44] इस प्रकार ट्यूशन के नाम पर अध्यापक विद्यार्थियों से पैसे ऐंठते हैं और अच्छी शिक्षा एवं संस्कार देने के बजाए उन्हें हिंसा करने के मार्ग पर चलने के लिए वातावरण प्रदान करते हैं। इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में भी शिक्षा संस्थानों का अभिभावकों पर दबाव उच्च शिक्षा संस्थानों शोधार्थियों पर उनके सुपरवाइजर द्वारा अनुचित व्यवहार और उनके जीवन में अनुचित हस्तक्षेप आदि को समाज के सामने लाने का प्रयास किया है। इतना ही नहीं शिक्षा के क्षेत्र में पुराने मानदण्डों के आधार पर नियुक्तियां करने की प्रथा समाप्त हो चुकी है। भर्ती के नए नियम आ

गए हैं। योग्यता ज्ञान आदि बातें अब पुराने हो चुकी है। अब तो जाति, पद प्रतिष्ठा और पैसा ही नियुक्तियों का आधार है और ये आधार छोटे से छोटे तथा बड़े से बड़े पद पर नियुक्ति का मापदण्ड है।

3.6 साहित्य संबंधी

प्रेमचंद लिखते हैं साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है- उसका दरजा इतना न गिराइए। वह देश-भक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई हैं।''[45]

इस आधार पर कहा जा सकता है कि साहित्यकार सीधे-सीधे समाज के प्रति उत्तरदायी होता है। सामाजिक समस्याओं, विसंगतियों विद्रूपताओं को सीधे-सीधे दिखा कर समाज को सही मार्ग में ले चलने का काम साहित्यकार का होता है। परंतु वर्तमान परिदृश्य में जब हम साहित्य की तरफ देखते हैं तो मालूम पड़ता है कि साहित्य की गरिमा को कुछ ठेस तो अवश्य पहुँची है, जिस गंभीरता की अपेक्षा साहित्यकारों से की जाती है, कुछ साहित्यकार उस पैमाने पर खरे उतर पाने में असमर्थ दिखते हैं। वे सैद्धांतिक बातें तो खूब करते हैं लेकिन उन्हीं सिद्धान्तों को व्यवहारिक रूप से जीवन में उतारने की जब बात आती है। तब यही साहित्यकार धीरे से पीछे खिसक जाते हैं।

अब साहित्य में भी धन का विशेष महत्व हो गया है और इसके लिए सम्पादक को क्या-क्या करना पड़ता है इसका चित्रण करते हुए गोपाल जी कहते हैं- ''सियासत तो सियासत, इधर साहित्य में भी तीसरी ताकत के आसार है कभी सम्पादक-लेखक के बीच पाठक भूमिका निभाते हैं। दूरदर्शन युग में पाठक का स्थान दर्शक ने ले लिया और संपादक के पास सम्पादन के अलावा विज्ञापन बटोरने, पात्रिका को कंधे पर लादकर बेचने की जिम्मेदारी भी आ गयी है।''[46]

आजकल साहित्य में पुरस्कार की जो नोच-खसोट चल रही है उस पर व्यंग्य करते हुए 'सरकार संस्कृति और पुरस्कार' लेख में गोपाल जी कहते हैं-''सबने अपने खेमे तंबू गाड़ लिए। कुछ प्रगतिशील हो गए। बाकी प्रक्रियावादी। किसको फुरसत थी कि लिखे-पढ़े। बाकी कोर-कसर पुरस्कार की मार-धाड़ ने पूरी कर दी सरकार लाइसेंस-परमिट बाँटती है और साहित्यिक मठाधीश अपनी जय-जयकार पर पुरस्कार। अपनों का लिखा साहित्य दूसरों का कूड़ा करकट।''[47]

आजकल साहित्य के मुख्य उद्देश्य क्या है इस पर चर्चा करते हुए अश्विनी कुमार 'आजकल लेख छपना एक पत्रिका का' में लिखते हैं-''जिस प्रकार राजनीति में कई दल और दलदल है उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी हर शहर में कई झंडे और पंडे है। साहित्य की पगडंडी से गुजरकर किसी नेता के चमचादल में शामिल हो जाना, साहित्य की ध्वजा थामकर किसी संस्थान, पीठ या विश्वविद्यालय में उच्च पद पर आसीन हो जाना, आकाशवाणी में जुगाड़ जमाना मंडी हाउस के चक्कर लगाना, विदेश जाना, भैया जी का भाषण लिखकर कृतार्थ होना, ये सब साहित्य के सार्थक उद्देश्य है।''[48] इस प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी, पहुंच, पकड़ और पैसे ने अपने पांव जमाने शुरू कर दिए हैं। आज साहित्य किस स्तर का है यह नहीं देखा जाता बल्कि साहित्यकार के स्तर से उसके साहित्य को आंका जाता है।

आज कुछ साहित्यकार किस प्रकार कवि सम्मेलनों से चंदा उगाही करते हैं और उनकी कथनी करनी में कितना अंतर है उसका चित्रण करते हुए गोपाल चतुर्वेदी कहते हैं-''धाकड़ कवि-आयोजक क्यों यह स्वर्ण अवसर गँवाए? उन्होंने शहर के हर रईस से चंदा उगाहा है कि कवि सम्मेलन के आयोजन में उनका व्यक्तिगत योगदान फोटो के रूप में हर बैनर-पोस्टर में नजर आएगा। चरित्र-निर्माण कविता से ही मुमकिन है। श्रोता इससे शुद्ध चिंतन और नैतिक जीवन का सबक सीखेंगे। भले ही कवि के निजी चरित्र पर कविता का कुछ असर न पड़े। उन्होंने कवियों से निवेदन किया कि वह युवा कल्याण की पावन मुहिम में उनका हाथ बटाएँ। उनके आने-जाने का व्यय और रहने-खाने की व्यवस्था है, बस पारिश्रमिक बख्श दें।

उनका नुक्कड़ कवि-सम्मेलन हर मुहल्ले में सफल रहा है। आयोजक प्रसन्न है। उन्होंने भी चरित्र-निर्माण के चक्कर में लाख के ऊपर कमाया है। अब उन्हें किसी और नृशंस हादसे का इंतजार है। कमाई का मौका किसे बुरा लगता है?''[49]

साहित्य के क्षेत्र में आज पुरस्कार पाने के लिए उच्च स्तरीय रचनाओं नहीं बल्कि पहुंच की आवश्यकता होती है। इस व्यंग्य करते हुए गोपाल जी कहते हैं-''शहर के सारे लेखकों से वह परिचित थे। इधर अपनी तीन-चार लोकप्रिय कविताओं के बल पर उनका सारा ध्यान किसी लेक्चरर-आलोचक को पकड़ और पटाकर अपनी कविता के बारे में 'चर्चा' करवाने का था। एक हास्य के काव्य-संकलन में उनका चित्रमय परिचय और कविताएं प्रकाशित हो चुकी थीं। सुरेश जी की इसी प्रकार कृपा बनी रही तो कोई न कोई पुरस्कार तो वह हथिया ही लेंगे। वह जानते हैं कि पुरस्कार पुस्तक या रचना पर नहीं, पहुंच पर निर्भर है। वह अपनी पहुंच लगातार बढ़ा रहे थे।''[50]

इस प्रकार जिस तरह से राजनीति और प्रशासन में भ्रष्टाचार है उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी खूब भ्रष्टाचार है। इस क्षेत्र में भी धन की महिमा निराली जिसके पास पैसा और पहुंच है वह योग्यता न होते हुए भी कवि बन जाता है और पुरस्कार प्राप्त कर लेता है जबकि जो योग्य है वह जीवनपर्यन्त भटकता रहता है। उसे कोई पहचानता तक नहीं है। पैसे के अभाव में अच्छा लेखक होते हुए भी वह अपने साहित्य को प्रकाशित नहीं करवा पाता जबकि पैसे के बल पर ओछे साहित्य से बाजार पटा पड़ा है। अतः प्रतिष्ठित राजनेताओं की तरह ख्यातिलब्ध चर्चित साहित्यकारों को भी गोपाल जी ने उनकी प्रवृत्तियों व साहित्यिक गुण एवं धर्म के कारण व्यंग्य का विषय बनाया है।

3.7 कानून व्यवस्था

गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्यों में भारत में कानून व्यवस्था की पोल खुलती नजर आती है। किस प्रकार कानून की रक्षा करने वाले कितने बड़े भक्षक इसका उदाहरण हम इस प्रकार देख सकते हैं-''सब अपने-अपने झोले ऐसी लगन और गंभीरता से भर रहे थे जैसे झोले भरना ही उनकी ड्यूटी है। उसके मन में संशय होने लगा। बड़े-बड़े चोर भी चोरी बेखौफ होकर नहीं करते हैं, किसी खटके की आवाज से भी भाग लेते हैं पर इंस्पेक्टर तो पूरी तरह से निर्भीक होकर बिना भय-शंका के अपनी झोली भर रहे थे।''[51] अर्थात् आजकल चोर डकैतों की कोई आवश्यकता ही नहीं रह गई है क्योंकि लूटने का कार्य तो अब पुलिसवाले ही कर लेते हैं।

नरेन्द्र कोहली ने भी पुलिसवालों की रोबदारी पर व्यंग्य करते हुए कहा है- हर दूसरे दिन छानबीन के बहाने थाने से कोई आ जाता है, कभी सिपाही, कभी दोफीतिया सिपाही, कभी तीनफीतिया सिपाही, कभी ए.एस.आई कभी सब इंस्पैक्टर .... कोई न कोई आया ही रहता है तो इसमें क्या बुराई है? मैंने कहा, इसका अर्थ है कि पूरा का पूरा थाना तुम्हारे घर हुई चोरी में रुचि ले रहा है और वे शीघ्र ही चोर को पकड़ लेंगे। तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिए।

प्रसन्न ही हूँ वह रूआंसी हंसी हंसा कि थाने वालों के लिए मेरा घर सड़क के किनारे का ढाबा हो गया। जिसको चाय की तलब उठती है या कुछ खाने का मन होता है, वह मेरे घर की धंटी दबा देता है। आता है बैठता है, पानी पीता है, चाय पीता है साथ में कुछ चना चबेना भी टूंगता है। मिठाई हो तो अधिक प्रसन्न होता है और फिर यह तसल्ली देकर कि चोर शीघ्र पकड़ा जाएगा, चला जाता है।''[52] अर्थात् कानून व्यवस्था के अंतर्गत पुलिसवालों का कार्य चोरों को चोरी के अवसर प्रदान करना है और शरीफ आदमी को हर तरह से परेशान करना है।

इस प्रकार गोपाल चतुर्वेदी ने पुलिस की जनसेवा, दादा का अहिंसा-उसूल, तरह-तरह के ओलंपिक, हम वकील क्यों न हुए, मध्यमार्ग का तंत्र, शहर और सावन, कुछ प्रतिक्रियाएँ, आदि व्यंग्य लेखों के माध्यम से लचर कानून व्यवस्था पर तीखे एवं धारदार व्यंग्य किए हैं।

गोपाल चतुर्वेदी के सामाजिक व्यंग्यों के अंतर्गत उपर्युक्त विषय के अतिरिक्त स्वास्थ्य संबंधी फैशन, संस्कृति धार्मिक आदि व्यंग्य भी आते हैं जहाँ इन्होंने समाज को दर्पण दिखाने का कार्य किया है। स्वास्थ्य संबंधी व्यंग्य के अंतर्गत वे आम जन को यह दिखाना चाहते हैं कि आज डॉक्टरभी मरीजों को लूटता है यह वाकई दुःखद है-''उसने अपने घर में ही डिस्पेंसरी खोल ली है। दोनों हाथ से लूट रहा है पैसे। अनुभव है। शफा है हाथ में। मरीजों की भीड़ लगी रहती है। उसने देखा है वह जीवन भर अस्पताल में खटा है। जबकि प्राइवेट पे्रक्टिस करने वाले डॉक्टरहर एक दो साल बाद छुट्टियां मनाने, कभी देश, कभी यूरोप में घूमे हैं। इस बार उसने तै किया है। वह भी लंदन, रोम, पेरिस की सैर करेगा। सिर्फ-वीजा- की प्रतीक्षा है। बस यों ही ग्रीष्म ऋतु पधारती रहे और मरीज। उसे क्या कमी है।''[53]

आज समाज में ऐसी विसंगति फैल चुकी है। गरीब आदमी रोटी के लिए तरस रहा है और यह रोटी की भूख उसे गलत काम करने के लिए मजबूर कर रही है-''सही भी है। चार पायों में बकरा है, दो पायों में जन। वह निर्धन है, असहाय है, दूसरों के उत्सव का सघन है। बकरा खाने की मेज पर सजता है। जन उत्पादन में खटता है। एक दिन का आकस्मिक रोजगार उसका त्योहार है। नहीं तो भूख उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। हमें सिर्फ एक डर है। कहीं वह गन के धंधे में न लग ले। भूख में बड़ी ताकत है। वह सब कुछ करा सकती है। सीधे-सादे जन को गन भी थमा सकती है।''[54] वाकई समकालीन समाज में बेरोजगारी सबसे बड़ी समस्या है। रोजगार पाने के लिए व्यक्ति कुछ भी करने के लिए तैयार है। चाहे उसे किसी भी स्तर तक क्यों न जाने पड़े।

समकालीन भारतीय समाज पाश्चात्य के प्रभाव से पूरी तरह प्रभावित हो चुका है। भारतीय समाज का खान-पान, पहनावा, रहन-सहन सभी पाश्चात्य संस्कृति की देन। इसके कारण हम अपनी संस्कृति अपने संस्कार भूलते जा रहे हैं। पाश्चात्य संस्कृति के भारतीय समाज पर बढ़ते इस प्रभाव पर व्यंग्य की चोट करते हुए गोपाल जी कहते हैं -''हम उनको बताते हैं कि यह सब वैश्विक संस्कृति का हिस्सा है। इससे हम क्यों खौफ खाएं। बाबूजी कहते हैं। कि उन्हें इस सबसे न डर है, न परहेज। पर जैसे एक पीढ़ी बाहर गई तो वापस नहीं आती है। धीरे-धीरे रहन-सहन, भाषा-पोशाक, तौर-तरीकों में पराई हो जाती है। वह वैसे ही बिना प्रयोग पहचान और कार्यक्रमों के संगीत, नृत्य और कला भी अपने खुद के घर में अजनबी हो जाएँगे।''[55] पाश्चात्य का प्रभाव हमारी संस्कृति पर इतना अधिक पड़ चुका है कि हम अपनी कला अपने लोकगीतों, लोकनृत्यों, लोकगाथाओं आदि को लगभग भूल गए हैं। बाजार का प्रभाव इतना अधिक हो गया है कि हम एक साथ रहकर भी एक दूसरे से अनजान रहते हैं। समाज में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के लोगों में संवादहीनता की स्थिति पैदा होने लगी है। गोपाल चतुर्वेदी अपने व्यंग्य की चोट के माध्यम से भारतीय समाज से मिटती जा रही हमारी संस्कृति को हमसे अवगत कराना चाहते हैं क्योंकि पाश्चात्य का प्रभाव, बाजारवाद और वैश्वीकरण इन सबकी चाह हमें और हमारी आने वाली पीढ़ी को भारतीय परंपरा, सभ्यता, संस्कृति आदि से अजनबी करती जा रही है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गोपाल चतुर्वेदी की पैनी दृष्टि ने समाज के कोने-काने में व्याप्त विसंगतियों को देखा और अपने व्यंग्य की गहरी चोट के माध्यम से सामाजिक चेतना लाने का प्रयास किया।

संदर्भ सूची :

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2010, पृष्ठ 1
2. (सं.) नन्द किशोर आचार्य, प्रेमचंद का चिंतन, वाग्देवी प्रकाशन, विनायक शिखर पालिटेक्निक कॉलेज के पास बीकानेर, 334003, संस्करण 2015, पृष्ठ 152, 153
3. वागीश सारस्वत, व्यंग्यर्षि शरद जोशी, शिल्पायन प्रकाशन, 10295, लेन न. 1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली, 110032, संस्करण 2013, पृष्ठ 155
4. सं. रामचन्द्र वर्मा, संक्षिप्त शब्द सागर, नागरी प्रचारणी सभा वाराणसी, सं.संवत2065 वि., पृष्ठ 111
5. टाम बाटमोर, अभिजन और समाज, मैकमिलन प्रकाशन, 2/10, अंसारी रोड़ दरियागंज, दिल्ली-110002, संस्करण, 1977, पृष्ठ 4
6. गोपाल चतुर्वेदी, फार्म हाउस के लोग, प्रकाशक ग्रंथ अकादमी, 1659, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2011, पृष्ठ 151
7. गोपाल चतुर्वेदी, फार्म हाउस के लोग, ग्रंथ अकादमी, 1659, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2011, पृष्ठ 156
8. सं. कमला प्रसाद, धनंजय वर्मा तथा अन्य, परसाई रचनावली खण्ड एक, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण 1985, पृष्ठ 26
9. गोपाल चतुर्वेदी, जुगाड़पुर के जुगाड़ू, प्रतिभा प्रतिष्ठान, 1661, दखनीराय स्ट्रीट नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-110002, संस्करण 2005, पृष्ठ 43
10. गोपाल चतुर्वेदी फार्म हाउस के लोग, ग्रंथ अकादमी 1659, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली, 2011,

पृष्ठ 101

11.अनु. रमेश सिन्हा, कम्युनिस्ट पार्टी का घोषण पत्र, शिल्पी प्रकाशन जी-82 विजय चौक लक्ष्मी नगर दिल्ली, सं.2000, पृष्ठ सं.22

12.गोपाल चतुर्वेदी, राम झरोखे बैठ के, ज्ञान गंगा, 205-सी चावड़ी बाजार, दिल्ली, संस्करण 2001, पृष्ठ 22

13. वही, पृष्ठ 23

14. वही, पृष्ठ 77

15. गोपाल चतुर्वेदी, भारत और भैंस, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, संस्करण 2002, पृष्ठ 9-10

16. वही, पृष्ठ 10

17. गोपाल चतुर्वेदी, फार्म हाउस के लोग, ग्रंथ अकादमी, 1659, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2011, पृष्ठ 64

18. गोपाल चतुर्वेदी, कुर्सीपुर का कबीर, ज्ञान गंगा 205-सी चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, संस्करण 2010, पृष्ठ 54

19. गोपाल चतुर्वेदी, निर्लज्ज समय के आस-पास, मेघा बुक्स, एक्स-11, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032, संस्करण 2012, पृष्ठ 19

20. गोपाल चतुर्वेदी, फार्म हाउस के लोग, ग्रंथ अकादमी, 1659, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली, 110002, संस्करण 2011, पृष्ठ 99

21. गोपाल चतुर्वेदी, सत्तापुर के निकट, पृष्ठ संख्या-22

22. गोपाल चतुर्वेदी, गंगा से गटर तक, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ 96

23. रवीन्द्र नाथ त्यागी, भित्तिचित्र राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, सं. 1999, पृष्ठ सं.154

24. गोपाल चतुर्वेदी, गंगा से गटर तक, ज्ञान गंगा, 205-सी चावड़ी बाजार, दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ 96

25. वही, पृष्ठ 87

26. गोपाल चतुर्वेदी, आजाद भारत में कालू, प्रभात प्रकाशन, संस्करण 1993, पृष्ठ 106

27. गोपाल चतुर्वेदी, भारत और भैंस, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी चावड़ी बाजार, दिल्ली, 11006, संस्करण 2002, पृष्ठ 13

28. कमला प्रसाद, धनंजय वर्मा तथा अन्य, परसाई रचनावली खण्ड दो, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 8, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, संस्करण 1985, पृष्ठ 94

29. गोपाल चतुर्वेदी, धांधलेश्वर, भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया लोदी रोड़, नई दिल्ली-110003, संस्कराण् 2008, पृष्ठ 68

30. गोपाल चतुर्वेदी, कुरसीपुर का कबीर, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, संस्करण 2010, पृष्ठ 28

31. गोपाल चतुर्वेदी, धाँधलेश्वर, भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया लोदी रोड़, नयी दिल्ली, 110003, संस्करण 2008, पृष्ठ 63

32. शरद जोशी, प्रतिदिन (एक)

33. गोपाल चतुर्वेदी धाँधलेश्वर, भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया लोदी रोड़, नयी दिल्ली, 110003, संस्करण 2008, पृष्ठ 302-303

34. गोपाल चतुर्वेदी, राम झरोसे बैठ के, ज्ञान गंगा 205 सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली, संस्करण 2001, पृष्ठ 113

35. गोपाल चतुर्वेदी फार्म हाउस के लोग, ग्रंथ अकादमी, 1659, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2011, पृष्ठ 48

36. वही, पृष्ठ 48-49

37. गोपाल चतुर्वेदी, कुरसीपुर का कबीर, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, संस्करण, 2010, पृष्ठ 183

38 . गोपाल चतुर्वेदी, आदमी और गिद्ध, ज्ञान गंगा 205-सी चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, संस्करण 2010, पृष्ठ 132

39. शरद जोशी प्रतिदिन (दो), किताब घर प्रकाशन नई दिल्ली, सं. 2005, पृष्ठ 376

40. गोपाल चतुर्वेदी कुरसीपुर का कबीर, ज्ञान गंगा 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, संस्करण 2010, पृष्ठ 181

41. व्यंग्य यात्रा सं. प्रेम जनेमय, लेख- नरेन्द्र कोहली, एक और लाल तिकोन अक्टूबर-दिसम्बर, 2009, अंक 21, पृष्ठ 26

42. गोपाल चतुर्वेदी, फाइल पढ़ि-पढ़ि, भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया लोदी रोड़, नई दिल्ली-110003, संस्करण 2008, पृष्ठ 89

43. सं. कमला प्रसाद, धनंजय वर्मा तथा अन्य, परसाई रचनावली खण्ड एक, राजकमल प्रकाशन, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण 1985

44. अश्विनी कुमार दुबे, शहर बंद है, भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली, 110003, संस्करण 2005, पृष्ठ 149

45. सं. नन्दकिशोर आचार्य, प्रेमचन्द का चिंतन, वाग्देवी प्रकाशन, विनायक शिखर, पालिटेक्निल कॉलेजके पास, बीकानेर, संस्करण 2006, पृष्ठ 163

46. गोपाल चतुर्वेदी, धाँधलेश्वर भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, संस्करण 2008, पृष्ठ 98

47. गोपाल चतुर्वेदी, 51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, डायमंड पाकेट बुक्स, प्रा.लि. एक्स-30, ओखला,

इंडस्ट्रियल एरिया फेज-11, नई दिल्ली-110020, संस्करण 2010, पृष्ठ 116-117

48. अश्विनी कुमार दुबे, शहर बंद है, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशन एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-10003, संस्करण 2005, पृष्ठ 3

49. गोपाल चतुर्वेदी, सत्तापुर के नकटे, सत्साहित्य प्रकाशन, 204 बी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, संस्करण 2014, पृष्ठ 142

50. गोपाल चतुर्वेदी, फार्म हाउस के लोग ग्रंथ अकादमी 1659, पुराना दरियागंज दिल्ली, सं.2011, पृष्ठ सं.114

51. वही. पृष्ठ सं. 12

52. नरेन्द्र कोहली, सबसे बड़ा सत्य, राजपाल प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ सं.109

53. गोपाल चतुर्वेदी, निर्लज्ज के आस-पास, पृष्ठ सं.73-74

54. गोपाल चतुर्वेदी, घांघलेश्वर, पृष्ठ सं.94

55. गोपाल चतुर्वेदी, कुर्सीपुर का कबीर, पृष्ठ सं,55